स्वामी रामतीर्थ

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

स्वामी रामतीर्थ महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद, महर्षि अरविन्द आदि की भाँति ही अपने काल के महामानव थे जिन्होंने अपनी अदम्य तेजस्विता, विलक्षण बुद्धि, सुदृढ़ संकल्प एवं आत्मविश्वास के बल पर देश की काया पलट डाली थी और पुनर्जागरण की आँधी उत्पन्न कर दी थी। वस्तुतः स्वामी राम तीर्थ का जीवन अत्यंत प्रेरणादायक एवं स्फूर्तिदायक था। वे पुनर्जागरण के मंत्रद्रष्टा, रहस्यवादी कवि, वेदांती व योगी होते हुए भी कर्मठता में ही जीवन की सफलता मानते थे। वे बड़े से बड़े कष्टों में भी हँसते रहते थे और कहा करते थे–

मैं हँसता हूँ और हँसूगा, मेरी आत्मा हँसने के लिये बनी है।

स्वामी रामतीर्थ ने मानव जीवन की सफलता के उपायों पर गहन चिन्तन किया। वे कहा करते थे–

सफलता के लिए पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य की नितांत आवश्यकता है। यदि भारतीय जीवित रहना चाहते हैं तो ब्रह्मचर्य धारण करें अन्यथा कुचले जायेंगे।......

.... सर आइज़क न्यूटन जैसे तत्त्व का अन्वेषक जिस पर इंग्लैंड को इतना गौरव है। 87 वर्ष जीता रहा। मृत्यु समय भी वह पूरी तरह होश में था। जिस तत्त्वज्ञ ने विश्व को तत्त्वज्ञान में बड़ा परिवर्तन ला दिया, वह कौन था वह कॉट था। वह बड़ा यती-सती था। उसके हृदय में कभी भी अपवित्र भावना नहीं आई थी। अमेरीका के हनरी डेविड थोरो तथा जर्मनी के विख्यात तत्त्वज्ञ हर्बर्ट स्पेसर दोनों महान् जितेन्द्रिय थे।

इस प्रकार की अवस्था का अंग्रेज़ी कवि टैनिसन ने इस प्रकार उल्लेख किया है–

My strength is as the strength of ten.
Because my heart is pure.
मेरी शक्ति दस व्यक्तियों के समान है क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है।

मेरी प्रिय आत्माओ! विभिन्न लेखकों द्वारा रचित स्वामी रामतीर्थ जी की जीवनियों का गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलन करने के उपरांत आपकी सेवा में उनकी संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए आप भी इस रुहानी गुलदस्ता रूपी स्वामी रामतीर्थ की संक्षिप्त जीवनी के फूलों को देखिए और झूम-झूम कर आनंदविभोर हो जाइए। प्रस्तुतः पुस्तक को मैंने सच्ची लगन एवं कड़ी मेहनत के पश्चात् लिखा है। वस्तुतः समर्पण और सेवा के ये संस्कार नई पीढ़ी तक भी पहुँचे। इसी प्रेरणा से इस पुस्तक का सृजन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लाल चंद चौहान, रोशन लाल अग्रवाल, जय किशन, नरेश बंसल, सत्यपाल मोदी जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषता लाल चंद चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन नहीं हो पाता। मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु अल्पज्ञ एवं अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से अनुरोध है कि उससे अवगत कराये ताकि भविष्य में उस त्रुटि की पुनरावृत्ति न हो।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 26.11.2016

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी महापुरुषों के जीवन चरित्र पर पुस्तकें लिखने व प्रकाशित करने में विशेष रुचि रखते हैं। उन्होंने महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानन्द, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महावीर हनुमान आदि महापुरुषों की जीवनियों पर भी प्रकाश डाला है। इसलिये स्वामी रामतीर्थ जी का जीवनचरित्र भी इनकी पैनी दृष्टि से छूटा नहीं। स्वामी रामतीर्थ जी का जीवन बड़ा ही संघर्षपूर्ण रहा है। अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का बड़ी दृढ़ता व आत्मविश्वास के साथ मुकाबला किया। ग़रीबी के होते हुए भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी। सादा भोजन, सदैव मोटा और सस्ता खद्दर ही पहना। ऐसी दरिद्रता में इन्होंने अपना अध्ययन कार्य पूरा किया। कुछ धन छात्रवृत्ति से कुछ बच्चों को पढ़ाकर प्राप्त धन से स्त्री और बच्चों की देखभाल भी करते।

स्वामी राम भारतीय संस्कृति से प्रेम के कारण बी.ए. में संस्कृत भाषा सीखने लगे।14 वर्ष का काम एक वर्ष में कैसे पूरा हो सकता था। अतः तीर्थ राम फेल हो गए और छात्रवृत्ति बन्द हो गई और इधर इनके पिता हीरानन्द ने बड़ा कठोर पत्र लिखा कि तू पढ़ता-लिखता कुछ नहीं। अब मेरी तरफ से किसी भी वस्तु की अपेक्षा न रखना। तेरी पत्नी आ रही है। उसे भी संभालना। राजा रामशरण और विशनकिशोर भी इन्हीं से अपने बच्चों को पढ़वाया करते थे। लोगों ने उनसे भी शिकायत की कि यदि अपने बच्चों को योग्य बनाना है तो रामतीर्थ से मत पढ़वाओ। ट्यूशन भी छूट गई। परन्तु राम द्वितीय प्रयास में परीक्षा में प्रान्त भर में प्रथम आये और 60 रुपये प्रतिमास छात्रवृत्ति भी मिलने लगी।

मई 1893 ई. में एम.ए. करने के लिए लाहौर गवर्नमैंट कालिज में प्रवेश लिया। 1895 ई. में स्कूल मास्टर का काम अपने हाथ में लेकर स्याल कोट गये। शरीर में कभी रोग उत्पन्न हो जाये तो उसकी

चिन्ता न करके काम में लगे रहते। कभी चेहरे पर उदासीनता न आने देते।

1896 ई. में स्वामी विवेकानन्द लाहौर आये, उनके प्रवचनों से रामतीर्थ बड़े प्रभावित हुए।इससे उनके जीवन में एक नया प्रसंग आया। वे अपनी ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिये स्थान-स्थान पर घूमने लगे। सन् 1896 ई. में होस्टल के सुपरिटेंडेंट हुए। नौकरी से उनका दिल भर गया और 1899 ई. में नौकरी छोड़ दी। सब लोग आश्चर्य चकित रह गये। कहने लगे, रामतीर्थ पागल हो गया।

स्वामी रामतीर्थ ने नौकरी छोड़ संन्यास ले लिया और वे वेदान्त का प्रचार करने लगे। इस दार्शनिक विचारधारा का जो परिष्कृत रूप उन्होंने सर्वसाधारण के सामने रखा वह आज तक की प्रचलित मान्यताओं से अलग और प्रगतिशील अर्थ रखता है।

संन्यास लेकर पत्नी को साथ चलने को कहते हुआ वह तीर्थराम मर चुका है जिससे तेरा विवाह हुआ था। तीर्थराम से आपका कोई संसार सम्बन्ध न रहा। स्वामी रामतीर्थ ने उत्तर भारत में नव वेदान्त प्रचार का शंखनाद किया, वेदान्त पर भाषण करते थे। इन्होंने सारे पश्चिमी और पूर्वीय दर्शन शास्त्रों का अध्ययन किया था। इनके लेखों में विवेकानन्द के लेखों की अपेक्षा ईसाई धर्म की ध्वनि अधिक सुनाई देती है।

स्वामी रामतीर्थ जापान, अमेरिका में भी गये,वहाँ भी इन्होंने वेदान्त पर प्रवचन किये, लोगों की आस्था इनके प्रति बढ़ी, उनके ऊपर इनके प्रवचनों का जादू जैसा प्रभाव था। वह अपने प्रवचन में कहा करते थे, अपने परिश्रम के फल के लिए कभी चिन्तित न हो। भविष्य की चिन्ता न करो,भय को हृदय में स्थान न दो। काम के लिये काम करो। भूतकाल को सोचकर उदास मत हो जाओ। रात दिन काम करो।

पूर्ण निश्चय से अनन्त निश्चय से अपने ऊपर निर्भर रहो,जगत

में कुछ भी दुर्लभ नहीं यदि अपने में आत्मविश्वास हो और ईश्वर पर पूर्ण भरोसा हो, तो आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। ईश्वर में आस्था और विश्वास सफलता की कुंजी है। देखो। सिंह स्वयं अपने पर निर्भर रहता है किसी के सहाय की अपेक्षा नहीं करता। हाथियों के झुण्ड के झुण्ड उसकी शक्ति के आगे टिक नहीं पाते। क्योंकि शेर से हाथी अधिक शक्तिशाली है परन्तु उसको उसने ऊपर विश्वास नहीं है।

स्वामी रामतीर्थ के अन्तिम शब्द–

राम की तबीयत अब संसार से ऊब गई है। अतः में अब शीघ्र ही इस संसार को त्यागने वाला हूँ।17-10-1906 ई. को दीपावली के दिन उन्होंने गंगा में स्नान का संकल्प लिया। गंगा जी की छाती-छाती पानी में खड़े हो गये और जल में डुबकी लगाई,ऐसा मालूम होता है कि वहाँ उनका पैर फिसल गया। दुर्बल शरीर था, घुटने में दर्द भी था, ये तैर न सके और न स्वयं को संभाल ही सके। वहाँ नीचे सतह में पानी सतह की भंवर में फंस गये। बड़ी देर बाद पानी के ऊपर दिखाई दिये, उनकी जीवन यात्रा पूर्ण हो चुकी थी। 33 वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए।

अपने सिद्धान्त के अनुसार वह कार्य करते रहे, वैदिक विचारधारा से उनके जीवन की गतिविधियां मेल नहीं खाती हैं। जिन विचारों से वह प्रभावित थे,उनका वह प्रचार करते रहे। समाज सुधारक कुछ अच्छी बातों पर वह विशेष जोर देते रहे, जैसे ईश्वर में विश्वास, कठिन समय में साहस न छोड़ना, धन संग्रह की उनकी कोई लालसा न थी। आत्मविश्वास व ईश्वर विश्वास पर उनका दृढ़ निश्चय था। उन्होंने असफलता में कभी धैर्य नहीं खोया। ग़रीबी की अवस्था में अपने आत्मबल को कमजोर न होने दिया। ऐसे महापुरुषों की जीवन से बहुत शिक्षा मिलती है। जो कोई अथक परिश्रम, समाज के लिये कोई कार्य करता है तो अवश्य उसका स्थान इतिहास के किसी

न किसी पृष्ठ पर अंकित अवश्य पाया जाता है। जीवन में आदर्शता हो और उसका प्रभाव अन्य पर न पड़े यह ही नहीं सकता। इनके जीवन से कठिनाइयों से संघर्ष करने की शिक्षा मिलती है। दूसरी सादगी, दृढ़ संकल्प और त्याग की भावना का सन्देश मिलता है।

श्री धर्मपाल कपूर जी ऐसे महान् पुरुषों की जीवनी के तथ्यों को संकलित करके प्रकाशित करते हैं, ताकि लोग महान् पुरुषों के जीवन से शिक्षा लेकर अपने जीवन का सुधार करें। स्वामी रामतीथ्र जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। यह मेरा मानना है कि पाठकों को उनके जीवन की घटनाओं से कुछ सीखने को अवश्य मिलेगा।

लालचन्द चौहान

से.नि.,राज्य विकास अधिकारी,

कोठी नं. 591/12, पंचकूला।

फोन : 0172-2563079

मो. : 9814881501

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	आरम्भिक जीवन	1
2.	आरम्भिक जीवन क्रमानुगत	10
3.	साधु क्यों और कैसे	18
4.	स्वामी राम तीर्थ संन्यासी के वेश में	21
5.	स्वामी राम तीर्थ जापान में	39
6.	स्वामी राम तीर्थ अमेरीका में	52
7.	साहित्यसृजन	61
8.	आनन्द अपने अन्दर में	62
9.	पुनरागमन	76
10.	महाप्राण	82
11.	स्वामी रामतीर्थ ज्ञानामृत	86

(1)
आरम्भिक जीवन

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में कई सन्तों ने जन्म लिया। स्वामी रामतीर्थ का स्थान उनमें किसी से कम नहीं। इस देश की मिट्टी के कण-कण में आध्यात्मिकता इस प्रकार समा चुकी है कि इस वैज्ञानिक और भौतिकतावादी युग में भी वह किसी न किसी रूप में अवतरित हो ही जाती है। स्वामी रामतीर्थ इसी पुरानी आध्यात्मिकता के नवीन प्रतिनिधि थे। संन्यास लेकर स्वामी बनने से पूर्व गृहस्थाश्रम में आप का नाम गोसाईं तीर्थराम एम०ए० के नाम से विख्यात था। तीर्थराम से रामतीर्थ बनने का युग आपके लिये बड़े संघर्ष का रहा। विकट दरिद्रता के कुल में जन्म लेने के कारण यह संघर्ष और भी भयानक हो गया था।

इनका जन्म पंजाब प्रान्त के गुजरांवाला जिले के मुरली वाला ग्राम में दीपावली के दिन 22.10.1873 ई० को हुआ था। इनके पिता गोसाईं हीरानन्द एक सामान्य तीर्थ पुरोहित थे। अपने यजमानों से जो कुछ भी प्राप्त होता था उसी से निर्वाह होता था। इस ग़रीबी के अतिरिक्त राम के शिशुकाल में ही एक और विपत्ति आई। जन्म के कुछ दिन बाद ही इनकी माता का निधन हो गया। माँ के दूध से भी वंचित होना पड़ा। बचपन से ही माता का दूध न मिलने के कारण आपकी शारीरिक स्थिति सदा निर्बल रही।

दरिद्रता और बचपन से ही मातृ-विहीनता यह दो विपत्तियां तो भाग्य की दी हुई थीं। अब तीसरी पिता के अज्ञान या उस समय के रीति-रिवाज ने लाकर खड़ी कर दी। तीर्थ राम अभी दो वर्ष के भी नहीं थे कि पिता ने उनकी सगाई कर दी थी। यह लगन गुजरांवाला के ही एक गांव विरो में हुआ था। बात लगन तक ही नहीं, दस वर्ष बीतते तक इनका विवाह भी हो गया। कोई सामान्य व्यक्ति होता तो इन एक के बाद एक विपत्तियों में अपना सिर न उठा सकता था, किन्तु तीर्थ

राम तो महान् थे। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी थी कि यह विचित्र बालक अपने वंश में अलौकिक बुद्धि सम्पन्न होगा। राम बचपन से ही एकान्त प्रेमी थे। धर्म कार्यों और पढ़ने में भी उनकी बड़ी रुचि थी। मन्दिरों में जाकर धर्म-कथाओं को सुनने का तो उन्हें व्यसन सा हो गया था। शंख ध्वनि से इन्हें विशेष अनुराग था। मन्दिर के शंख की गूँज पर इनका मन आनन्द से नाच उठता था। पूजा की घंटियों के नाद से इनकी आत्मा झंकृत हो गई थी। यह उनमें प्रभु की पुकार सुनने लगे थे।

बस इन्हीं संस्कारों ने तीर्थ राम के भावी व्यक्तित्व को अध्यात्म के रंग में रंगने में सहायता पहुँचाई। कुछ बड़े हो जाने पर राम ग्राम में ही एक मुस्लिम से उर्दू पढ़ते रहे। शिक्षक का हृदय से आदर करते और उनकी सेवा में सदा तत्पर रहते थे। ये प्रायः गुरु से मंदिर में जाकर थोड़ी देर भजन सुनने के लिये छुटटी मांगा करते थे और कहते कि वह समय भोजन की छुट्टी में से कम कर देंगे। इनकी उदारता और दूरदर्शिता का अनुपम उदाहरण तो यह है कि ये एक दिन पिता से कहने लगे कि वे दूध देने वाली भैंस को शिक्षक को दे दें क्योंकि शिक्षा के रूप में उन्होंने उससे कहीं उत्तम दूध पिलाया है।

15 वर्ष की आयु में तीर्थ राम ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और पंजाब भर में प्रथम आये। इस सफलता ने उनकी प्रतिभा को प्रमाणित किया और परीक्षा बोर्ड ने उन्हें प्रोत्साहन करने के लिए छात्रवृत्ति दी। लेकिन हीरानन्द जी तीर्थ राम को और अधिक पढ़ाना नहीं चाहते थे। तीर्थ राम ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आगे पढ़ाई जारी रखने का निश्चय किया और कॉलेज में भर्ती हो गए। कॉलेज की पढ़ाई के लिए स्कूली खर्चा और भोजन वस्त्र के व्यय का प्रबन्ध तो आवश्यक था वह कहाँ से पूरा हो। तीर्थ राम ने इसका सहज रास्ता निकाल लिया। उन्होंने छात्रवृत्ति से तो स्कूल की फीस, पुस्तक आदि का खर्च चलाने का निश्चय किया तथा भोजन, वस्त्र के लिए ट्यूशन द्वारा खर्च चलाने का रास्ता निकाल लिया। अपनी इच्छा से

कॉलेज में भर्ती होने के कारण हीरानन्द जी ने तो उन्हें कोई भी किसी भी तरह की सहायता न करने की ठान ली थी।

परन्तु तीर्थ राम जी की आवश्यकतायें थीं ही कितनी जिन्हें पूरा करने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़े और वे अपना काम बड़ी मितव्ययिता तथा सादगी से चलाते रहे। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं को इस स्तर का रखा जो आसानी से पूरी हो सकती थीं। कदाचित कभी कोई कमी पड़ती भी तो वे उसे बड़ी सूझबूझ के साथ निभा लेते थे। इस तरह की कई घटनाओं का उल्लेख उनके जीवनी लेखकों ने किया है जिनसे विदित होता है कि घोर अभाव के दिनों में भी वे अपने आपको किस प्रकार परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लेते थे। उनकी आय औसतन तीन पैसे रोज थी और उसी में वे सन्तोषपूर्वक गुजारा कर लेते थे।

लाहौर जैसे शहर में तीन पैसे रोज पर गुजारा करना बड़ा ही कष्टसाध्य था। वे सुबह के वक्त एक दुकान पर दो पैसे की रोटी खरीद लेते। दाल मुफ्त मिलती थी। उसी से काम चल जाता था। कुछ दिन तो इसी तरह बीत गये परन्तु बाद में दुकानदार ने अपना नियम बदल दिया और तीर्थ राम से कह दिया कि दाल मुफ्त नहीं मिल सकती। इस पर विवश होकर तीर्थ राम ने शाम का खाना बंद कर दिया और सुबह एक वक्त ही भोजन करने लगे। उनके पास कड़ाके की सर्दी में भी पहनने के लिए कोट नहीं था न तो पतलून और न नेकटाई ही थी। पहनने के लिए केवल खद्दर की एक कमीज और एक पायजामा था।

वहाँ एक रुपया मासिक पर इन्होंने ऐसी जगह ली जहाँ उपयुक्त एकान्त हो और पठन तथा मनन के लिये स्वतन्त्रता। आरम्भ से ही इनके घर की आर्थिक दशा खराब थी। अब फीस भी काफी लगती थी। अतः भगवान दास नामक एक व्यक्ति आपकी सहायता किया करते थे। 1890 ई० में परीक्षा शुल्क भेजनी थी और अभी भगवान दास से रुपया नहीं मिला था तो कॉलेज के प्रिंसिपल ने इनके नाम का प्रपत्र आवश्यक हस्ताक्षर कराकर भेज दिया। अतः इस प्रकार से

परीक्षा में बैठ गये । 1890 ई० में इन्होंने 12वीं परीक्षा पास कर ली । लाहौर के कॉलेज में भर्ती होने के कारण इनके पिता रुष्ट हो गये थे । पूरे एक वर्ष तक तीर्थ राम अपने गांव मुरारी वाला नहीं गये । तीर्थ राम के साहसपूर्ण प्रयास में इनके मामा रघुनाथ मल और विचित्र योगी धन्ना भगत ने सहायता की । कॉलेज के द्वितीय वर्ष में इन्होंने मामा को लिखा था– ''मेरी सबसे बड़ी मांग है समय की और सबसे बड़ी आवश्यकता है एकान्त स्थल की । परमात्मा मुझे इन तीनों चीजों की कभी कमी न देना ।

(1) एकान्त

(2) समय

(3) ज्ञान प्राप्ति की इच्छा

कुछ दिनों बाद इनके पिता ने, जो तीर्थ राम को किसी काम में लगा देने को अधीर हो रहे थे, जब यह सुना कि राम तो अब आगे पढ़ने का संकल्प कर चुका है तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा । वे लाहौर आकर इनकी स्त्री को साथ रहने को कह गये । इतना ही नहीं ऐसे अटूट और सच्ची लगन वाले विद्यार्थी को किसी प्रकार की सहायता देना भी बन्द कर दिया । इन्होंने 1893 ई० में बी०ए० की परीक्षा पास की थी । यह इनका दूसरा प्रयास था । ये पहली बार विश्व विद्यालय के नियमों की छोटी सी त्रुटि के कारण फेल कर दिये गये थे । ऐसा कहा जाता है कि इस परीक्षा के परीक्षक ने तेरह प्रश्न पूछे और यह सूचना दी कि वे नौ प्रश्न हल करें, तीर्थ राम ने तेरह प्रश्न हल करें और परीक्षक को सूचना दी कि कोई से नौ जांच लें ।

कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि स्वामी राम भारतीय संस्कृति से प्रेम के कारण बी०ए० में संस्कृत भाषा सीखने लगे । चौदह वर्ष का काम एक वर्ष में कैसे पूरा हो सकता था । तीर्थ राम फेल हो गये और छात्रवृत्ति बंद हो गई और इधर इनके पिता हीरानन्द ने बड़ा कठोर पत्र लिखा – राम ! मैंने सुना कि तू पढ़ता-लिखता कुछ नहीं, अब मेरी तरफ से किसी भी वस्तु की अपेक्षा न रखना । तेरी धर्मपत्नी भी आ रही है अब उसे तुझे ही संभालना होगा । साथी भी कुछ शर्मिंदा करते

थे कि राम तो प्रथम आये । राजा रामशरण और बिशन किशोर दीवान के दो बच्चों को राम पढ़ाया करते थे । लोगों ने उनसे भी शिकायत की कि तुम यदि लड़कों को योग्य बनाना चाहते हो तो राम की ट्यूशन मत रखो । इससे तो तुम उन्हें पागल बनाओगे । अतः ट्यूशन भी छूट गई । द्वितीय प्रयास में ये प्रान्त में प्रथम आये और 60/- रु० प्रतिमास छात्रवृत्ति मिली । परन्तु इन्होंने पिता को लिखा– यह सब प्रभुकृपा का फल है, ऐसा फल मनुष्य को अपने प्रयत्न से प्राप्त नहीं होता । वैसे तो तीर्थराम इस समय विपत्ति में थे क्योंकि पत्नी का भी कोई न कोई प्रबन्ध करना ही है । तीर्थ राम अपने हृदय देवता से कह उठे – ऐ मेरे प्यारे ! मेरी ही आत्मा ! क्या तू राम की परीक्षा चाहता है ? परन्तु राम कभी फेल होने वाला नहीं । सोने को अग्नि में डाला जाये तो उसकी कीमत बढ़ती है, कुन्दन बनता है । राम ने कहा मैंने यह शरीर तेरे ही हाथों बेच दिया है । राम को चाहे मिट्टी में मिला, चाहे फूलों पर सुला, राम को इससे क्या मतलब ? उस समय राम ने यह कविता पढ़ी–

राजी हैं हम उसी में, जिसमें तेरी रजा है ।

यहाँ यों भी वाह वाह है, वो भी वाह वाह है ।

दूसरा पत्र संरक्षक मामा को लिखा था कि– ''मुझे दो वजीफे मिलेंगे एक 25/- रु० दूसरा 35/-रु० मासिक का । यह सब परमात्मा की दया है ।''

मई 1893 ई० जब इनकी अवस्था केवल साढ़े उन्नीस वर्ष की थी, गणित में एम०ए० करने के लिए लाहौर गवर्नमैंट कॉलेज में प्रवेश किया । इन्होंने इंग्लैंड जाकर ब्ल्यूरिबन की प्रतिस्पर्द्धा के लिए राज्य छात्रवृत्ति के लिए प्रार्थना पत्र भेजा । किन्तु यह छात्रवृत्ति दूसरे को मिली । इन्होंने 18-2-1894 ई० को लिखा था कि संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जिस पर हम भरोसा कर सकें । वे ही प्रभुकृपा के भागी होते हैं जो उस पर श्रद्धा करते हैं ।

सरकारी कॉलेज में रहते समय इन्होंने केवल दूध पर जीवन

निर्वाह आरम्भ किया । कभी-कभी उबले चावल खा लेते थे । भोजन सादा हुआ करता था और वस्त्र तो और भी साधारण । इन्होंने सदैव मोटा और सस्ता खद्दर ही पहना । अपने कॉलेज काल की आर्थिक दुर्दशा का वर्णन करते हुए तीर्थराम ने निम्नलिखित पत्र अपने अभिभावक को लिखा था । उस पत्र से ही उनकी अवस्था का अनुमान हो सकता है ।

"......... पिछली रात जब मैं दूध पीने बाज़ार गया तो वहाँ मेरी एक जूती खो गई, नाली में जा पड़ी होगी । मैंने बहुत खोजी लेकिन उसका कहीं पता न लगा सका । दूसरे दिन सुबह एक पैर में अपनी जूती और दूसरे पैर में एक जनानी जूती जो संयोग से मेरे कमरे में पड़ी थी, पहन कर कॉलेज जाना पड़ा । मेरी यह जूती भी अब बहुत पुरानी हो गई है । इसलिए आज सवा नौ आने का एक नया जोड़ा खरीद कर लाया हूँ ।"

यह पत्र शायद उन्हें नहीं जूती खरीदने का कारण समझाने के लिए लिखा होगा । सवा नौ आने का खर्च करते हुए उन्हें अपने संरक्षकों को सूचना ही नहीं देनी पड़ती थी, बल्कि सन्तोषजनक कारण भी बताना पड़ता था । दो पैरों में अलग-अलग तरह के जूते पहनने पर कॉलेज में जो उपहास हुआ होगा, उसका अनुमान तो आप भी लगा सकते हैं । परन्तु तीर्थराम को ऐसे उपहासों को सुनने की तो आदत पड़ गई थी । अपनी ग़रीबी पर उन्हें कभी लज्जा नहीं आती थी ।

1895 ई० में स्कूल मास्टर का काम अपने हाथ में लेकर स्यालकोट गये । मिशन हाई स्कूल में सैकिंड मास्टर के स्थान पर इनकी नियुक्ति हुई । एक बार इन्हें अपने मित्र से 10/- रु० उधार मांगने पड़े । जब तक राम स्यालकोट में रहे, अपने इस उपकारक को 10/- रु० मासिक लौटाते रहे । स्यालकोट से राम चाचा को इस प्रकार लिखते हैं– स्यालकोट की सनातन धर्म सभा में मेरे आने से एक नई जान सी आ गई है, उन लोगों के लिए थोड़ा बहुत इस प्रकार का काम कर देने से आनन्द मिलता है । सभी लोग मुझ से सन्तुष्ट हैं, सभी दया

करते हैं ।

शरीर में कभी रोग उत्पन्न हो जाए तो उसकी चिन्ता किए बिना भी अपने काम में लगे रहते थे । उनका स्वभाव बन गया था । एक बार उन्हें गुर्दे का दर्द होने लगा । धीरे-धीरे बढ़ता गया और उन्हें बिस्तर पकड़ लेना पड़ा । कोई और होता तो कराह-तड़प कर ही मर जाता । परन्तु स्वामी राम के चेहरे पर वही हँसी-मुस्कान खिली रहती । उर्दू के प्रसिद्ध कवि इक़बाल उनके घनिष्ट मित्रों में से थे। वे उन्हें देखने पहुँचे, जैसी दीन-दयनीय दशा की कल्पना थी ठीक उसके विपरीत स्थिति देखकर आश्चर्यचकित रह गए। स्वामी राम ने कहा–''क्या हुआ अगर शरीर रोगी है । परन्तु आत्मा तो सब जगह है । वह प्रसन्न है । शारीरिक रोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।''

1896 ई० में स्वामी विवेकानन्द लाहौर आये । उनके प्रवचनों की व्यवस्था हुई । रामतीर्थ तो इस प्रकार के आयोजनों में अग्रणी रहते ही थे। वहाँ उनका स्वामी जी से निकट सम्पर्क बना और वे उनके व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए । अन्तिम दिन विदाई के अवसर पर राम तीर्थ ने स्वामी जी को एक घड़ी भेंट में दी । विवेकानन्द जी ने उसे कुछ देर तक अपने पास रखा और फिर राम तीर्थ जी की जेब में रखते हुए कहा– ''मैं इसे अपनी जेब में रखूँगा?' अब तो जैसे रामतीर्थ को अपना वांछित आदर्श प्राप्त हो गया । इस प्रसंग में उनके सामने जीवन का एक नया आयाम प्रस्तुत कर दिया। वे अपनी ज्ञान-पिपासा को शांत करने के लिए स्थान-स्थान पर घूमने लगे। हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ आदि कई स्थानों पर उन्होंने एकान्त जप और ध्यान साधना की ।

सन् 1896 ई० में ये होस्टल के सुप्रिन्टैंडेन्ट हुए । इसकी सूचना इन्होंने धन्ना भगत को इस प्रकार दी – ''छात्रावास के मुसलमान निरीक्षक ने छात्रावास के भवन में गौमाँस पकवा कर बड़ी गलती की । यह तो जान बूझकर हिन्दू विद्यार्थियों के दिल पर चोट पहुँचाना था । वे यहाँ से अलग कर दिए गये और मैं उनके स्थान पर नियुक्त हुआ हूँ ।

नौकरी से उनका मन हट गया । मिशन कॉलेज में वे केवल दो घंटे काम कर निर्वाहोपयोगी जीविका प्राप्त कर लेते थे और सन् 1899 ई० में उन्होंने नौकरी भी छोड़ दी । सब लोग आश्चर्यान्वित हो उठे । विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी ने इनके त्याग-पत्र पर विचार किया । सीनेट के सदस्यों ने राम तीर्थ को हर तरह मनाया परन्तु वे त्यागपत्र लेने के लिए राज़ी न हुए । अन्ततः एक सदस्य के मुँह से निकल गया—"तीर्थ राम पागल हो गये हैं ।" इक़बाल भी वहीं पर बैठे हुए थे । बोले—"तीर्थ राम पागल हो गये हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि दुनियाँ में फिर अक़्लमंद कहाँ है ।

स्वामी रामतीर्थ ने नौकरी छोड़कर संन्यास ले लिया और वे वेदान्त का प्रचार करने लगे। इस दार्शनिक विचारधारा का जो परिष्कृत रूप उन्होंने सर्व-साधारण के सामने रखा वह आज तक की प्रचलित सभी मान्यताओं में अलग और प्रगतिशील अर्थ रखता है । इसके प्रति उन्हें इतनी दृढ़ आस्था थी कि एक-एक अवसर पर उन्होंने कहा—"भारतवर्ष का पतन वेदान्त के जीवन मूल्यों में अनास्था होने से हुआ है ।"

उनके कर्तृत्व और व्यावहारिक वेदान्त के विषयों में सामंजस्य ढूँढा जाये तो यही प्रतीत होता है कि स्वामी रामतीर्थ वेदान्त के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं । उनकी धारणा का मूल था – "हर घड़ी ऐसा अनुभव करो कि जो शक्ति सूर्य और नक्षत्रों में अपने को प्रकट कर रही है वही तुम में भी है और तुम उसी के अविभाज्य अंग हो । तुच्छ विचारों और बन्धनों को सर्वथा भूल जाओ फिर तुम अमर जीवन प्राप्त कर सकोगे ।" स्वयं को ईश्वर का अंश – अविनाशी राजकुमार, आत्मा स्वीकार कर लेने के बाद कौन मनुष्य, साधक निराश और अकर्मण्य रह सकता है ।

सन् 1900 ई० जुलाई मास में ये लाहौर को छोड़ कर सदा के लिए हिमालय के अरण्यों में चले गये । इनके मित्र और प्रशंसक बड़ी

संख्या में लाहौर रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए। जब स्वामी राम उनसे विदा होकर जाने को तैयार थे तो उन्होंने तीर्थराम की ही बनाई एक ग़ज़ल अलविदा को गाया। सन् 1901 ई० में इन्होंने गंगोत्री, यमनोत्री, बद्री, केदारनाथ की यात्रा की। ये रात-दिन हिमालय के पावन वक्षस्थल पर खेला करते थे। बद्रीनाथ की यात्रा के बाद मैदानों में इन्होंने छोटे आकार के सर्वधर्म सम्मेलन के दो अधिवेशनों का सभापतित्व किया। ये सम्मेलन स्वामी शिवगणाचार्य द्वारा संगठित हुए थे, सन् 1902 ई० में राम जापान गये और अमेरिका में दो वर्ष प्रवास करने के बाद 1904 ई० में भारत आ गये।

(2)

आरम्भिक जीवन क्रमानुगत

एक बार तीर्थराम ने देखा कि उनके पास महीने भर के लिए केवल 3 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से बचे हैं। मन में सोचा ईश्वर परीक्षा कर रहा है, मैं इतने से ही संतोष करूँगा। सवेरे के भोजन पर दो पैसे और सांयकाल में भोजन पर एक पैसा व्यय करते। कुछ दिन बाद जिस दुकानदार से यह रोटी लेते थे उसने कहा आप दाल का तो कुछ देते ही नहीं उस दिन से बालक तीर्थ राम एक समय ही खाकर रहने लगे।

ऐसी दरिद्रता में इन्होंने अपना अध्ययन कार्य पूरा किया। कुछ धन छात्रवृत्ति से प्राप्त और कुछ बच्चों को पढ़ा कर प्राप्त धन से स्त्री और बच्चों की देखभाल भी करते। ये सदा सादा कपड़ा, पुरानी खद्दर का बना पहनते। अपने जीवन में इन्होंने सदा अपने ऊपर कड़ी नजर रखी। इस बात से सदा सावधान रहते कि कोई व्यर्थ धारणा, इच्छा या बेकार बात तो हृदय में नहीं जम रही। अपने मित्रों से कहा करते थे–'राम आप से रोज थोड़ा सा दूध और कुछ फल ले लेता है क्या उसे इसके लिए क्षमा न करेंगे।'

गणित में एम०ए० करने के बाद राम को नौकरी खोजने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था उन्हें देखकर, सुनकर ज्ञात हो सकता है कि भारत में उस समय जीवन कारोबार में प्रवेश होना कितना कठिन था। भारत में शिक्षा सरकारी नौकरियों का ध्येय लेकर ही उन्नत हुई। तीर्थ राम के पत्रों को पढ़कर पता चलता है कि उस समय भारतीय स्नातकों को किन विपत्तियों से गुजरना पड़ा है।

राम रात-दिन कृष्ण भक्ति में लीन रहते थे। कृष्ण का नाम सुनते ही ये तन-बदन की सुधि भूल जाते। लाहौर में घंटों रावी नदी के किनारे भगवत् ध्यान में घूमा करते। स्वामी राम के बारे में ऐसा कहा

जाता है कि रावी के किनारे आकाश में भूरे बादल छाये देखकर चिल्लाया करते थे—"देखो, देखो तो अरे वही मेरा कृष्ण है, ऐ बादल। मेरे ईश्वर। मेरे कृष्ण का रंग भी तेरा सा है तूने कृष्ण को छिपा रखा है। ओ बादल! बता कृष्ण कहाँ है? ओ भगवान् क्या मुझे तुम दर्शन न दोगे?" बादलों को फटता हुआ देखकर राम रो पड़ते। "ऐ बादल तुम मेरे सम्बन्धी हो। जाओ परन्तु कृष्ण से कहना कि राम को अवश्य मिले देखे उसकी आँखों में कितना पानी भरा है और कहना—

यदि लूटना हो तुझे वर्षा का मजा
तो आ मेरी आँखों में बैठ
यहाँ काले, भूरे और लाल तरह-तरह के बादल
सदा झड़ी लगाये रहते हैं।

'आह! यह मेरा जीवन कितना, कितना लम्बा है; मैं तो अधीर हो रहा हूँ। मेरी प्यास बुझा दो या मार डालो। हे सूर्य को चमक देने वाले! चन्द्रमा को सौन्दर्य, फूलों में सुन्दर रंग, सुगन्ध देने वाले मुझे ज्ञान देने में क्यों कृपणता करता है?' कुछ ऐसी-ऐसी ही बातें सोचते, बोलते तीर्थराम बेसुध हो जाते।

एक दिन राम चिल्ला उठे—'अरी आँखों! यदि तुम कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकती तो मुँद जाओ। ऐ हाथो! यदि भगवान् के चरणों का स्पर्श न किया तो किस काम के? ऐ भगवान् यदि जीवन की बली चाहते हो तो ये प्राण भी तुम्हारे अर्पण है।' ऐसे कहते ये रोये जाते, आँसुओं से कपड़े भीग जाते, तन की सुध न रहती। जब कभी सांप या नाग इनके सामने फन फैलाये आ जाता तो उसकी ओर लपक कर कहते, 'आओ प्रभु! आओ, इसी रूप में दर्शन दो।' इतना कहते कि फिर बेसुध हो जाते? इनके जो मित्र इन्हें ऐसा करते देखा करते थे वे इनसे कहते 'राम! तुम्हारा भगवान् तो तुम्हारे भीतर है तुम बाहर क्यों ढूंढ रहे हो?'

पागल होकर कहते—'मुझ में' कमीज़ फाड़ डाली, छाती को

नोचने लगे खून निकल आया तो फिर बेसुध ।

तीर्थ राम कहा करते– 'धन्य है । आज मैंने कृष्ण भगवान् की झांकी देखली । अब उनके बिना चैन नहीं ।'

तीर्थ राम केवल अप्रतिम सहिष्णु ही नहीं, बड़े दृढ़ निश्चयी भी थे । कार्य की सफलता के लिये वे जीवन को दाँव पर लगा देते थे । जिस काम को वह पूरा करने का संकल्प करते उसे पूरा करके ही विश्राम लेते । इस सम्बन्ध में उनकी एक घटना इस प्रकार है–

एक रात को राम ने गणित के बहुत ही कठिन चार प्रश्न हल करने के लिए निकाले और प्रण किया–'सूर्योदय से पहले हल कर डालूंगा या सिर धड़ से अलग कर लूंगा ।' राम का यह काम उचित तो नहीं कहा जा सकता परन्तु राम ने यह बता दिया कि उन्होंने कितनी कठोर साधना से ज्ञान प्राप्त किया । चार प्रश्नों में से तीन तो आधी रात तक हल कर लिए किन्तु चौथा प्रश्न राम हल न कर सके और प्रातः की किरणें फूटने लगीं तो ये हाथ में खंजर ले कोठे पर चढ़ गये । खंजर की नोक गर्दन पर रख दी खून बूंद-बूंद टपकने लगा । राम आश्चर्य में रह गया? प्रश्न का हल आकाश में चमक रहा था । राम ने उसे देखा और आकर काग़ज़ पर लिख लिया ।

जिन व्यक्तियों में महानता का बीज होता है वे ही इतने दृढ़ संकल्प वाले होते हैं । साधारण मनुष्य ऐसी छोटी-छोटी बातों में जीवन और मरण का प्रश्न नहीं बनाते । महान् व्यक्तियों की दृष्टि में सभी कुछ महान् होता है । कर्तव्य के पथ में तो वे असफलता की कल्पना भी नहीं करते । अनेकों बार ऐसे ही कठिन परिश्रम से उन्होंने गणित का अगाध ज्ञान प्राप्त किया था । हम इनके व्यक्तित्व को परम सुन्दर पुष्प की भाँति धीरे-धीरे खिलता हुआ पाते हैं । जो कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि ये उस समय कृष्ण के समान ऊँचे लोकों में रहने वाले महात्माओं से स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे । जैसे सभी सच्चे जिज्ञासुओं को मिला करती है ।

पंजाब के अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर ये

बचपन से युवावस्था तक अपना निर्णय स्वयं करते रहे। इन्होंने क्षण-क्षण दिन-प्रतिदिन स्वयं को ढाला। यही कहा जा सकता है कि इन्होंने हृदय में भविष्य का सम्पूर्ण चित्र पहले से ही अंकित कर लिया था। ऐसा लगता था मानो किसी निश्चित् उद्देश्य के लिए जानबूझ कर गम्भीरता के साथ यत्न किया हो। धनहीन बालक के हर पग में ज्ञान सम्पन्न हृदय की दृढ़ता दिखाई देती है। ऐसी दृढ़ता जो भयंकर कठिनाई में भी नहीं सहम सकती थी। इनका अध्ययन व्यसन था। ये इस आशा से अध्ययन नहीं करते थे कि इन्हें कोई सांसारिक लाभ होगा। दैनिक अध्ययन क्या था? ये अपने जीवन हवन कुण्ड की वेदी पर श्रद्धा से परिश्रम की आहूतियां देते थे।

नये कपड़े न सिलवाना, रोटी कम खाना, कभी-कभी निराहार भूखे ही रह जाना; किसलिये? केवल इसलिये कि रात में पढ़ने के लिये तेल जुट जाए। सायं से प्रातः, प्रातः से सायं अध्ययन में तल्लीन रहना, एक साधारण बात थी। इन्हें विद्या से इतना प्रेम था कि प्रेम में हृदय को भी वशीभूत कर लिया था। भौतिक आवश्यकताओं और छोटी मोटी सुविधाओं का ध्यान भी न रहता था। ज्ञान के लिए सदैव जलने वाली ज्वाला पर भूख, प्यास, सर्दी-गर्मी का तो प्रभाव ही न होता था। जब ये प्रोफेसर होकर 200/- रुपये मासिक कमाने लगे तक इन्होंने सबसे पहले दयावान धन्ना भगत की कठोर मांग की पूर्ति की। इतना वेतन मिलने पर भी इनकी कठिनाई उतनी ही थी जितनी पहले, क्योंकि रुपया मांगने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। भाई रुपया, पिता रुपया, स्त्री रुपया, सभी मांगने और लाहौर में परिवार भर का खर्च चलाना पड़ता। इसे अतिरिक्त आगन्तुक अतिथि भी बहुत बढ़ गये थे क्योंकि ये लाहौर के काफी बड़े व्यक्ति माने जाने लगे थे।

इनके विद्यार्थी जीवन को देखने वालों से पूछो जिन्होंने इनको बिना किसी सहायता के परिश्रम करते हुए और बिना शस्त्र के जीवन से लड़ते हुए देखा। दान-पुण्य का ढिंढोरा पीटने वाले इस देश में भी

इस ब्राह्मण बालक को लगातार कई दिनों तक नहीं के बराबर भोजन मिलता था। हम कह सकते हैं स्वामी राम ने जो समय और धन शिक्षा में प्रयुक्त किया वह इन्होंने कठिनतम परिश्रम द्वारा दाना-दाना करके संचयित किया था। दरिद्रता और जटिल परिस्थितियों में यह कली धीरे-धीरे खिलती हुई हमारे सामने कवि, दार्शनिक, विद्वान् और महान् गणितज्ञ के रूप में निकली। जब प्रिंसिपल ने इनका नाम प्रान्तीय सिविल सर्विस में भेजने की इच्छा प्रकट की तो इन्होंने अश्रु भरी आँखों से यों कहा–

मैंने इतना अथक परिश्रम इसलिए नहीं किया कि मैं अपनी फसल को लोगों के हाथ बेचूं। वह सब बाँटने के लिए जमा की है। मैं उच्च पदाधिकारी होने की अपेक्षा एक शिक्षक बनना अधिक उपयुक्त समझता हूँ।

तीर्थ राम जी पहुँचे हुए थे, इन्हें ऊपर से प्रेरणा का भावावेश होता था, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। ये एक सच्चे भक्त थे। स्मरण इनकी आत्मा थी। ये खुद मस्ती भरे हुए कवि थे। ये ऐसे ही पुरुष थे जो विश्व में सर्वत्र ईश्वर के अलौकिक सौन्दर्य का दर्शन करके विह्वल रहते थे। लोगों ने इन्हें यकायक भाव में आत्मविभोर होते देखा। कोई भी व्यक्ति जिसमें थोड़ी बहुत आध्यात्मिक दृष्टि हो इस बात से असहमत नहीं हो सकता कि इनके व्यक्तित्व की प्रभा वैसी ही थी जैसे चैतन्य प्रभु में। भक्ति धारा तो हर समय अत्यन्त वेग से बहती रहती थी। आरम्भ के दिनों में जब ये जनता के सामने बोलने खड़े होते तो कृष्ण का नाम लेते ही आँसू बहने लगते। कदम्ब के वृक्ष पर इन्हें कृष्ण दिखाई देते थे। हरिद्वार गंगा में स्नान करते मुरली की ध्वनि इनके कानों में गूंजा करती थी। घर में प्रेम से सूरसागर पढ़ा

करते थे। ये दिन-रात कृष्ण प्रेम में रोया करते थे। सुबह इनकी स्त्री इनके तकिये को आँसुओं से तरबतर पाती थी। हृदय की कोमलता ने कभी इनका साथ नहीं छोड़ा। वशिष्ठ आश्रम के फर्श पर इन्हें प्रेम में चिल्लाते देखा गया है।

विद्यार्थी जीवन में राम सबसे दूर, परिस्थितियों से अछूते, केवल बौद्धिक विकास में ही आकण्ठ निमग्न रहते थे। उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति में डूबे हुए इन्हें दायें-बायें देखने का अवकाश न था। ये जीवन धारण वीणा के तार आदर्श के अनुसार खींच रहे थे। इनका चरित्र भीतर, बाहर पूर्णतः निर्मल था। जो इन्हें पहचानते हैं वे इन्हें श्रद्धापूर्वक स्वीकार भी करते हैं। इनका जीवन आरम्भ से ही धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संग्रहीत हो रहा था। राम अपनी मूर्ति की वक्र रेखाओं को निकालने के लिए सदा हथौड़ा लिए रहते थे। शुभ से श्रेष्ठ और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर ये नित्य आत्मोन्नति में आगे बढ़ते जाते थे। जब ये गणित के प्रोफेसर हो गये तो इन्होंने एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी–गणित का अध्ययन कैसे करें? इसमें इन्होंने यह बताया कि चिकना चुपड़ा माल मसालेदार भोजन पेट में ठूंसते रहने से तीक्ष्ण बुद्धि के विद्यार्थी भी अयोग्य हो जाते हैं। हल्के भोजन से मस्तिष्क सदैव खुला हुआ रहता है। विद्यार्थी के लिए यह एक गुप्त भेद है।

विद्यालय चल रहा था। छात्रगण दो कतारों में बैठे शिक्षक से पाठ पढ़ रहे थे। पाठ खत्म होने पर अध्यापक ने श्याम पट पर एक लकीर खींची और छात्रों से प्रश्न किया–"बच्चो तुममें से कोई लकीर को बिना मिटाए छोटी कर सकता है।"

सभी छात्र चुप हो गये। किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। एक छात्र उठा और श्याम-पट के निकट आया। उसने शिक्षक के हाथ से खड़िया लेकर श्याम-पट पर खींची हुई लकीर के पास ही, उसमें एक

बड़ी लकीर खींच दी ।

अध्यापक उस छात्र की बुद्धिचातुर्य से अवाक रह गये और विद्यार्थियों से बोले–यह याद रखो! जीवन में महान् बनने के लिए किसी को मिटाना आवश्यक नहीं है। इसके लिए तो हमें स्वयं ही अपने कार्यों द्वारा औरों से आगे बढ़ना होगा।'' – यह अध्यापक थे– प्रोफेसर तीर्थ राम। प्रायोगिक प्रतीकों के माध्यम से शिक्षा देने की यह उनकी अपनी विधि थी।

ये बार-बार अपने को पिंघलाते और सांचे में ढालते ताकि पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सके। कोई कमी जीवन में न रह जाये। सांचे में ढाल-ढाल कर इन्होंने अपने को सिद्ध पुरुष बना लिया था। राम ने बहुत सीधे ढंग से उपदेश दिए हैं। ये लेखक बनने के लिए कभी नहीं लिखते, वक्ता बनने के लिए कभी न बोलते। किन्तु सत्यता तो यह है कि जब इनके पास दूसरों को देने के लिए कोई योग्य चीज न होती तभी कलम उठाते या होंठ खोलते थे।

इनकी उपस्थिति से आस-पास का सारा वातावरण मुग्ध हो उठता। ऐसे नम्र और प्रबल अध्ययनकार व्यक्ति का कहीं और प्रमाण नहीं मिलता। इनके संग में श्रोता का हृदय स्वर्ग कभी सैर करने लगता। एक क्षण में अनायास ही आँसू निकल आते तो दूसरे क्षण में जादुई मुस्कराहट से आत्मविश्वास की श्वास आने लगती। बहुत से साधारण मस्तिष्क तो इनकी प्रेरणा से ऐसे उठे कि वे अपनी शक्ति में उत्थान का अनुभव करने लगे।

इनके स्पर्श ने किसी को कवि बनाया तो किसी को चित्रकार। यदि किसी को जीवन का रहस्य बताया तो किसी को सैनिक बनाया। इनकी वाणी प्रबल हो गई थी। इनका चरित्र वाचाल हो उठा था। इनका अनुभव दूसरों को उत्प्रेरित करता। इनका आकर्षक व्यक्तित्व चुम्बक का काम करता। ऐसे महापुरुष ने जब लाहौर छोड़कर

हिमालय की गोद में जाने का निश्चय किया तो वहाँ के निवासियों ने विदाई इन शब्दों से की ।

अलविदा मेरी रिया जी ! अलविदा !

अलविदा ऐ प्यारी राँची ! अलविदा !

अलविदा ऐ दोस्तो दुश्मन ! अलविदा !

अलविदा ऐ शीत उष्ण ! अलविदा !

अलविदा ऐ दिल ! ख़ुदा ले अलविदा !

अलविदा राम ! अलविदा ऐ अलविदा !

इस प्रकार कॉलेज को अश्रुपूर्ण नेत्रों से अलविदा कर प्रोफेसर राम ने लाहौर से प्रस्थान किया था ।

(3)

साधु क्यों और कैसे

1901 ई० में महान् जाज्वल्यमान व्यक्तित्व ने भगवा वस्त्र पहन कर संसार को चकित कर किया। अपने पिता जी को संन्यास लेने की सूचना स्वामी रामतीर्थ ने इस प्रकार दी—

.... मैं अपना शरीर परमात्मा के पास जुए में हार चुका हूँ।

स्वामी राम के भगवा वस्त्र पहनने का एकमात्र कारण था इनकी स्वामी विवेकानन्द से भेंट। जब स्वामी विवेकानन्द लाहौर पहुँचे तो निवासियों में नई जान आ गई। दैविक भाषण प्रवाह या वक्तव्य कला, सर्वस्व त्याग, उनकी शक्ति, उनका व्यक्तित्व उनका विशाल मस्तिष्क सबने बहुत बड़ा प्रभाव दिखाया। लाहौर में 'वेदान्त' पर किया प्रवचन उनकी वक्तृत्व कला का सर्वोत्तम उदाहरण था। वक्तव्य में विवेकानन्द जी ने गुरुगोबिन्दसिंह की जयन्ती मनाने के ढंग की काफी प्रशंसा की थी। जब विवेकानन्द लाहौर पहुँचे तब राम बालक ही थे परन्तु इनकी स्मरणशक्ति पर उसकी अमिट छाप पड़ी। जिस भवन में विवेकानन्द का भाषण होता दर्शनों के उत्सुक लोग कन्धे से कन्धा भिड़ाकर प्रवेश करने की चेष्टा करते। जब स्वामी विवेकानंद जी मंच पर चढ़े ..... उस समय उनकी छवि, उत्तम स्वास्थ्य से दमकता शरीर, रक्तवर्ण वेश-भूषा, ऋषियों का स्मरण कराने वाली मुख मुद्रा, बड़ी-बड़ी आँखें जिनका जादू विश्व में व्याप्त हुआ, पंजाबी फैशन का नारंगी रंग का साफा बांधे, देखते ही बनती थी। वेदान्त केसरी ने गर्जना आरम्भ किया। घंटों दहाड़ते रहे सब शान्ति से सुनते जैसे जादू हो गया हो। लोगों के अंतःकरण मानसिक क्षितिज में आनन्द की सैर करने लगते।

शक्ति सम्पन्न संन्यासी से लाहौर चकित हुआ क्यों न होता? रामकृष्ण परमहंस की महान् आत्मा ने प्रेरणा की थी। भ्रम होता था कि

ज्ञान की लौ लप-लप जल रही है या विवेकानन्द का भाषण। जब वे वेदान्त पर बोलते तो प्रतिभा चरम सीमा तक पहुँच जाती। भक्ति विषयक व्याख्यान ही उनका ध्येय था। विवेकानन्द की वक्तृत्व कला, संसार पर्यटन और भाँति-भाँति के वेदान्त प्रचार को देखकर राम की हार्दिक लालसा बलवती हो उठी। विवेकानन्द यौवन सम्पन्न थे यह देख राम का उत्साह फूट निकलने को उत्सुक हुआ। विवेकानन्द ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने राजनीति के क्षेत्र में भी वेदान्त का प्रयोग किया। राम की विवेकानन्द से भेंट होने का ही फल था कि स्वामी राम ने संन्यास का संकल्प पक्का कर लिया। विवेकानन्द का आदर्श, वेदान्त व्याख्या की व्यापकता और अद्वैत सिद्धान्त जिसने तीर्थराम के मूक आत्मानुभव को जिह्वा प्रदान की। बस! राम इसी प्रभाव से संन्यासी हुए और हिमालय पर्यटन को चल पड़े।

यह स्मरणीय है कि राम के साथ पर्यटन पर जाने के लिए इनकी पत्नी ने विशेष आग्रह किया किन्तु राम के लिए यह असम्भव था, फिर भी राम ने कहा—यदि वह दोनों बच्चों को छोड़ दे और माँ-पुत्र का पवित्र नाता जोड़ ले तो वह साथ ले जाएगा। ममतामयी पूर्ण ममत्व त्याग, दोनों बच्चों को छोड़ कर स्वयं को माता कहलवा, पति को पुत्र कह, चली। शायद पति-पत्नी के इतने बड़े त्याग का प्रमाण इतिहास में अन्यत्र कहीं मिलना दुर्लभ है। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि जब धर्म पत्नी के साथ चलने का आग्रह किया तो उसे आपने कहा—

वह तीर्थराम मर चुका जिससे तेरा विवाह हुआ था। फिर भी वह न मानी तो आपने उससे प्रतिज्ञा करवाई कि आज से वह अपने को विधवा मानेगी, तीर्थराम से उसका कोई संसारी संबंध न होगा।

विवेकानन्द से राम की उत्प्रेरणा में नयी शाखा मिली। राम के वेदान्त पहलू पुनः नये सिरे एवं व्यापक व्याख्या से आरम्भ हुए जिनका निर्देशन विवेकानन्द ने किया था। एक अन्तर अवश्य है। राम की भाषा में प्रौढ़ता, प्रवाह और सुदृढ़ता उतनी नहीं मिलती जितनी

विवेकानन्द की कला में। न राम की वक्तृत्व कला में वह जोर और उखाड़ देने वाला तर्क या व्यंग्य ही था जो विवेकानन्द में था। राम शरीर से भी समान बलिष्ठ न थे, हाँ! अनंत ज्ञान, अज्ञात चैतन्य की दमक, संगीत मधुरता और सुन्दर सुकुमारता से द्रवीभूत करने वाले वाक्य इन्होंने चुन-चुन कर बाहर फेंके। स्वामी विवेकानंद दार्शनिक बढ़कर तो स्वामी राम की समाधिजन्य परमानन्द में अधिकता। राम अटल आधार शिला तो विवेकानन्द वक्ता। विवेकानन्द पूर्व संन्यासी तो राम का पलड़ा शान्तिमय मस्ती में भारी था।

(4)
स्वामी रामतीर्थ संन्यासी के वेश में

कवि जैसे भावुक हृदय वाले गृहस्थ की वासनायें और भावनायें दोनों पर पानी फिर गया और वे साधु हो गये। बाह्य कारण कुछ भी रहा हो उनका यह कार्य बाह्य संसर्ग का ही परिणाम न था वरन् यह तो अपने स्वाभाविक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के अवश्यम्भावी प्रतिफल से हुआ। संन्यास लेने का उद्देश्य संसार से विरक्त होकर प्रभु के नाम की माला फेरने से नहीं होता। स्वामी राम ने केवल विरक्ति की भावनाओं में बहकर भगवा वस्त्र नहीं पहने, उनका लक्ष्य था संन्यास लेकर परिव्राजक बनने का। संसार को सद्-आचरण और मानवीयता का मार्ग दिलाने का। एक मित्र ने जब उनसे पूछा कि आपने परिवार का त्याग क्यों किया तो उन्होंने उत्तर दिया –

अपने परिवार की वृद्धि के लिए ही मैंने घर की दीवार तोड़ी है, मैंने अब सारे संसार को परिवार बना लिया है।

स्वामी राम ने बलात् अपने हृदय को दबा कर संन्यासी के भगवा वस्त्र धारण नहीं किये थे। इनकी संकल्प शक्ति अजेय थी, इन्होंने ऐसा ही संकल्प किया था। उनका हृदय इतना कवित्वशील और इतना भावुक था कि वह पहले वेश में ठीक-ठीक मेल नहीं खाता था। संन्यासी होने से पूर्व जो तीर्थ राम था अब स्वामी रामतीर्थ हो गया। और इसी नाम से ये विश्व विख्यात हुए। कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने अंग्रेज़ी हस्ताक्षर Rama Tirth में से i निकालकर नाम RamaTruth करने लगे। जिसका अर्थ है– राम सत्य। अंग्रेज़ी में Swami को निम्न प्रकार लिखते– So am I अर्थात् मैं वही हूँ। अब किसी भी जगह इनके हस्ताक्षर निम्न प्रकार से होते– 'So-am-I Rama Truth' वही मैं हूँ राम सत्य'।

इसी प्रकार ये अन्य शब्दों से खेला करते थे। ये स्वतंत्र पंछी की भाँति सदैव चहचहाट में मस्त रहने लगे। ओ३म् को भी यह ओ-अम्

कहते। फारसी में 'ओ' का अर्थ है 'वह' और अम् का अर्थ 'मैं' हूँ। इस प्रकार ये ओम को 'मैं ईश्वर हूँ' के रूप में समझते। हिन्दू के स्थान पर सदैव 'इन्दू' (चन्द्रमा) कहकर पुकारते। प्रायः ये अपनी घड़ी से खेला करते थे। चाहे प्रातः हो या सायं या मध्याह्न कुछ भी हो, यदि इनसे कोई पूछता कि क्या बजा है? तो बड़े धैर्य से घड़ी देखते फिर पूछने वाले का चेहरा देखते और कहते–'प्यारे इस समय ठीक एक बजा है।' यदि इनसे कोई पूछता आप सदैव एक ही बजा बताते हैं? तो उत्तर मिलता–''प्यारे राम की घड़ी ही ऐसी है उसमें सदा एक ही बजता है।''

एक बार इन्होंने अपने व्याख्यान का शीर्षक बताया–''हर एक दिन नये वर्ष का नया दिन है और हर एक रात बड़े दिन की रात है। विषय सुनते ही श्रोता भौचक्के रह गये। ऐसा लगता राम व्याख्यान का शीर्षक चुनने के बहाने अपना आनन्द मधुर सौरभ चारों ओर बिखेर देते हैं। जब राम ईश्वर की चर्चा करते तब इनका शरीर वैसे ही कांपता जैसे गायक की उंगलियों से सितार के तार झनझनाते हैं। यदि रूपक में राम का चित्र खींचा जाये तो घाव की यंत्रणा से फड़फड़ाते हंस का चित्र बनाना होगा। प्रेमानन्द में विभोर ये अपने नेत्र मूंद लेते और कहते–

प्रेम सागर की वर्षा करके,
मैं संसार को आनन्द से नहला दूँगा,
जो विरोध करे उसका भी स्वागत,
उसे गले लगा लूंगा।
सभी सभायें, समाज मेरे हैं,
मैं सबका स्वागत करता हूँ।
मैं प्रेम बाढ़ और प्रतिमा के सिवा कुछ भी नहीं।
मैं सबको समान प्रेम करता हूँ।

कभी-कभी राम ऐसे विचित्र भावों में खो जाते तो ऐसा लगता जैसे कोई कवि या दार्शनिक इनके सम्मुख खड़ा हो और ये उससे वार्तालाप कर रहे हों। इन्हें न स्वयं की परवाह थी और न उत्तरदायित्व की। राम पर्वतों और एकान्त के प्रेमी थे। सघनतम वनों में रहते। आधी रात के समय मार्ग विहीन खंदकों और खाइयों की सैर करने निकल पड़ते। सीधे-खड़े पर्वतों पर न जाने कैसे चढ़ जाते। वस्तु मात्र के अन्तःस्थल में ऐसा प्रवेश करते जैसे पक्षी हवा में विचरते हों। जब ये जंगलों में घूमते तब महान् से महान् सम्राट् भी इनके सामने तुच्छ थे।

समाज के तंग वायुमण्डल में इनका दम घुटता था। शारीरिक परिश्रम के इतने अधिक प्रेमी थे कि जंगलों से ईंधन काट सिर पर रख कर लाते। जिस बुद्धिजन्य महान् अद्वैत वेदान्त की व्याख्या शंकराचार्य ने की थी उसी का प्रचार राम वैष्णव भावापन्न हृदय से करते थे। संसार के सब ग्रंथकारों, अवतारों, महात्माओं, कवियों और योगियों के संबंध में अपना मत प्रकट करते समय अद्भुत रसिकता का परिचय देते थे। इनकी अनोखी तथा निष्पक्ष आलोचना में किसी प्रकार का पांडित्य प्रदर्शन, बनावटी अभिमान की नाम मात्र छाया अथवा और कोई निस्सार बात नहीं होती थी। वेद से लगाकर किसी नवीन से नवीन मौलिक पंक्ति तक जो विचार इनके मन में आता यथायोग्य रूप से प्रगट कर देते थे।

ये अच्युत कोटि के विद्वान्, तत्त्वज्ञ और ब्रह्मवादी थे। बुद्धि के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति को भी ऊँचे शिखर पर पहुँचा चुके थे। ये अपने को ब्रह्म कहते और आजीवन ब्रह्मतत्व के अनुभव की चेष्टा करते रहे। इनका साक्षात्कार क्षण-क्षण ब्रह्मवृत्ति को उच्चतर स्तर पर स्थिर रखने को तत्पर रहता। असावधानी हो जाने पर कहते–''देखो-देखो मैं स्वयं अपना विरोध कर रहा हूँ।'' इन्होंने जोरदार शब्दों में घोषणा की–''मनुष्य एक साथ दो वस्तुएं नहीं बटोर सकता वह चाहे तो माया बटोर ले या ईश्वर का साक्षात् करले।''

माया को ये क्षुद्र आत्मा कहते थे और ईश्वर को उच्च आत्मा। इनके चरित्र में कहीं भी सिद्धान्त और व्यवहार का विरोधाभास न रहा था।

एक साधक के रूप में निरन्तर इन्द्रियों से ईश्वर का संचय किया करते थे। हिमालय के आंगन में हृदयाग्नि की लौ इसलिए जलाये रहे कि देखें घनघोर हिम उसे शांत कर सकता है या नहीं। एक दिन ये गंगोत्री की हिम पर समाधिस्थ होकर जा बैठे। हृदय से वृष्टि को आज्ञा दी। वृष्टि हो चली। ....'बस! बंद करो वर्षा को!' यह कहने से ही भूरे बादल फट गये। सूर्य मण्डल की मुस्कराहट फिर खिल गई। ''मेरा शरीर और प्रकृति एक है मैं प्रकृति और आत्मा की नस को उसी प्रकार हिला सकता हूँ जैसे अपने हाथ पैर।'' सच मानिये राम ऐसे-ऐसे ही कौतुक किया करते थे और सच्ची आत्मा को ही ईश्वर मानते थे।

विद्वता की गर्द के कण-कण झाड़कर एकदम नंगे हो हिमालय के वनों में ईश्वर का सफल दर्शन किया करते थे। इसी प्रकार प्रकृति की दिव्य गोद में इस महामानव का जीवन चल रहा था। यदि कोई सचमुच सत्य का साक्षात् कर ले तो स्थूल शरीर का भी पतन नहीं हो सकता। वह निःसंदेह चिरन्तन हो जायेगा। 'अखिल विश्व ही माया है, भ्रम है। एक, केवल सत्य के सिवा कहीं कुछ नहीं है' यह एक प्रकार पूर्णतः शंकर के 'माया' सिद्धान्त के वशीभूत हो गये थे। अद्वैत के अनुभव से भरे हुए ये सच्चे वैदिक कवि थे। स्वभाव और परम्परा से एक वैष्णव थे। इनकी साधना सुसंस्कृत होकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँची हुई थी। अपने स्वाभाविक सहज उद्‌गारों में ये हिन्दू की अपेक्षा फारसी अधिक थे।

साधु के विषय में स्वामी राम इस प्रकार लिखते हैं—'क्या भगवे कपड़े पहनने से ही कोई साधु बन जाता है? हाँ कहीं-कहीं भगवा वस्त्रों के नीचे प्रेम में रंगा दिल भी पाया जाता है। कभी-कभी इनके भीतर राम का दीवाना, मस्ताना भी झलक मार जाता है। किन्तु प्रत्येक प्राणी यह समझता है कि उसके सौन्दर्य से जगमग चेतना साधु के वस्त्रों में सीमित नहीं। उस ऊँचाई पर जहाँ चढ़ने की कल्पना से पैर

कांपते हैं, वह ज्योति जगमगाती है जिसके प्रकाश से योगी आगे बढ़ता है। ज्योर्तिमय चेतित महापुरुष बन्दी खाने में भी मिल सकता है और शरीर के घोरतम कारागृह में भी जहाँ स्वयं बंदी होकर बैठता है। परन्तु काली कोठरियों में भी ईश्वर का प्यारा उसके हाथ में हाथ डालकर रहता है। तीनों लोकों में उसका संचरण होता है। पुस्तकों पर आँखें गढ़ाने वाला विद्यार्थी सहसा एक ऐसे शब्द पर लक्ष्य करता है जो लिखा नहीं जा सकता। वह इधर बन्धन मुक्त होता है और पुस्तक उसके कृपा कटाक्ष के लिए तपस्या करती है।..... "आध्यात्मिक त्याग ने, समाधि की मस्ती में मनुष्य को चारों ओर से बेखबर किया। बस! यहीं सच्ची साधुता है।"

भारत के एक इसी साधु में ऐसी अद्भुत विचित्रता थी जो अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। जैसे पानी पर हरी काई छा जाती है उसी प्रकार अनगिनत साधु भारत की छाती पर इकट्ठे हो चुके हैं। परन्तु राम एक अद्भुत सुन्दरतम कमल पुष्प, झील की शोभा बढ़ाने वाले हैं। छोड़िये– ये गतिविहीन साधु तो भारतीय इतिहास में अतीत के अंधकार के स्वाभाविक परिणाम है। सबकी भावनाओं और रूचियों में उन्नतिशील परिवर्तन हो रहा है। इनके समीप का वायुमण्डल आनन्द से भरा रहता था। ऐसा लगता था–भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों एक साथ इनमें मूर्तिमान हो उठे हों। वनों के शांत एकान्त में क्या तुमने कभी तीतर को बोलते सुना है?– ईश्वर! तेरी जय हो! सुभाने अल्लह।' ठीक ऐसा लगता जैसे श्रोताओं के कानों से शब्द टकराया हो। ये प्रायः अन्य व्यक्तियों के गीत लेते और उन्हें थोड़ा सा अदल-बदल कर अपने नाम से गाने लगते। यह भी गूंगी किन्तु सजीव हार्दिक भावों, उद्गारों से भरी हुई मौलिकता थी जिसकी शान्ति में प्रकृति की ध्वनि भी निजी हो जाती है।

गर्मियों की जलती दोपहर में लाहौर की आग उगलती सड़क पर जब राम घूमकर आते तो इनके पैरों के तलुओं का स्पर्श करते तो उन्हें

बिल्कुल ठंडा पाते। जब इनसे पूछा जाता तो कहते – ''क्या गंगा की ठंडी निर्मल धारा सर्वत्र प्रवाहित नहीं होती? मैं कभी गर्म सड़कों पर नहीं घूमता। जिसकी स्वर्ण लहरें मेरे पैरों का स्पर्श करती हैं मैं उसी गंगा की पीयूष धारा में विचरता हूँ।'' भाव निमग्न भोजन, वस्त्रों से अनभिज्ञ, अश्रु, प्रवाह के साथ स्वामी जी नक्षत्रों के झूले में झूला करते। हरिद्वार में गंगा स्नान करते ऐसे मगन होते कि आँखें मूंद, कान बंद कर कदम्ब के वृक्ष पर श्रीकृष्ण को देखते और वंशी का संगीत सुनने में आत्मविभोर हो जाते जो अन्य स्नान करने वाले हज़ारों यात्रियों में से किसी को भी सुनाई न देता था।

एक दिन एक महिला राम से एकान्त में भेंट करने आई। वह स्वामी जी के सामने अपना घरेलू रोना रोने लगी। राम आसन लगाये बैठे रहे और दो घंटें उनके सामने रोती झींकती रही। अन्त में उसने सोचा 'सच है, यह साधु लोग बहुत ही गर्वीले और अभद्र होते हैं। एक स्त्री उनके सामने रोती रहे किन्तु उनके मुंह से सहानुभूति का एक शब्द भी न निकले और कुछ न सही करुण दृष्टि से देखा भी तो नहीं।

यह कहते हुए जब महिला अपनी गाथा समाप्त कर चुकी जब स्वामी जी ने उसकी ओर रक्तवर्ण आँखों से देखकर कहा, ''माँ'' बस फिर ओम्, ओम्, ओम् का जप करने लगे। उस स्त्री ने बताया– ''उस समय मानों मेरी आँखों के सामने प्रभात फूट पड़ा हो। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं पृथ्वी छोड़कर गगन के नीचे उड़ रही हूँ। मुझे ज्ञात हुआ जैसे मैं विश्व की माँ हूँ। देश मेरे हो गये राष्ट्र सन्तान बन गये। मुझे ऐसा लगता था जैसे मुझे स्वामी जी के जन्म स्थल पर जाना होगा इसीलिये मैं आई हूँ। राम का वह ओम् शब्द मेरी हड्डियों में गूँज रहा है। जो आनन्द उन्होंने मुझे प्रदान किया मेरा हृदय उस पर बार-बार बलिदान देना चाहता है। मेरे हृदय का अमृतद्वारा खोल दिया है मैं पवित्र हो गई हूँ।

आत्मानन्द की लहर से तो ये पागल हो उठते। दिन, रात बीतते चले जाते उन्हें पता न लगता। न जाने कहाँ खोये रहते। अमेरिका में

किसी झील के किनारे स्वामी जी ओम्-ओम् की ध्वनि उच्चारित करते निवास करते थे। वहाँ प्राकृतिक चिकित्सा के उद्देश्य से बहुत से निराश रोगी आया करते थे। राम की उपस्थिति ने उन्हें मनोबल प्रदान किया। वे स्वस्थ हो गये। वहाँ लोग इन्हें स्वास्थ्य दाता कहा करते थे। प्रातः चार बजे उषा के हिलोरों से जागकर मंद समीर की गुदगुदी को साथ लेकर राम निर्भीक मुस्कराहट भरी आँखों को ले मधुर संगीत के स्वागतार्थ पर्वतों पर या किसी नदी के किनारे मजा लेने निकल जाते और कहते–

आओ प्यारे तुम भी आओ, राम के साथ हँसो, खेलो, जी खोलकर हँसो, जी खोलकर खेलो। मेरे बच्चे जल्दी आओ। बस तुम प्रकृति के समीप, राम के समीप निवास करो। मैं तो शिव हूँ, आनन्द रूप हूँ। आओ!

इनके चरित्र में यथार्थतः काव्य रस की धारा प्रवाहित होती स्पष्ट दिखाई देती है। राम कहते –

मुझे अकेला रहने दो।
आनन्दोत्सव की लहरें आने दो।
ओ सर्वाधिक स्वादिष्ट पीड़ा।
इस आनन्द श्रोत को बहने दो।

लिखना पढ़ना दूर
व्याख्यान से परे हटी–
नाम धाम से क्या मतलब?
आदर व्यर्थ आडम्बर है?

निरादर कोई अर्थ नहीं रखता,
खिलौने क्या जीवन लक्ष्य हो सकते हैं?
तर्क, न्याय और विज्ञान,
लूले लंगड़े विचारे
यदि मेरी ओर देखें तो अंधापन मिट जाये।

राम कहते क्या थे, कविता करते थे। इनकी वाणी में अद्‌भुत शक्ति थी।

प्यारे तुझे क्या करना है?
कुछ भी मत कर,
बस अपने घर को संभाल ले,
उसके किवाड़ खोल दे,
उन्हें सबके,
हर एक के लिए खुला रहने दे,
अपनी सम्पत्ति को ग़रीबों में बाँट दे,
और तैयार होकर उस जगह आजा,
जहाँ राम तेरी बाट जोहता है

ओ प्रसन्नता बहो!
उत्सुक होकर बहो–
और बहते-बहते,
समानता के समुद्र को पार कर जाओ,
एक झटके में तोड़ डालो–
सारे बंधनों और कर्तव्यों को,
टुकड़े-टुकड़े कर डालो,
और अपने ब्रह्मभाव के प्रताप से प्रतापी हो जाओ।

भीतर देखो, भीतर ढूंढो
तुम्हें सदा उत्तर मिलता रहेगा।
तुम स्वयं राम हो।
मैं अग्नि हूँ, मैं ही सूर्य चन्द्र,
नक्षत्रों और ग्रहों में चमकता हूँ।

मैं हवा में बहता और लहरों में ढुलकता हूँ ।
मैं ही पुरुष, मैं ही स्त्री, मैं ही युवक, मैं ही युवती ।
नवजात शिशु मैं हूँ, और डंडे से चलने वाला
झुरियों वाला बुड्ढा मैं हूँ ।
जो कुछ है वह सब मैं हूँ,
कृष्ण, भ्रमर, सिंह और मत्स्य ।
जिसे मैं अंधा बनकर चारों दिशाओं में ढूंढता था,
वह मेरी आँखों में छिपा बैठा था, मुझे पता न था ।

काश देख ले चिड़िया मुझे बाग़ में–
तो भूल जाये अपने गुलाब को,
और भूल जाये ब्राह्मण भगवान् को ।
अगर हो जायें उसे दर्शन मेरे ।
मैं छिपा बैठा अपने शब्दों में,
जैसे सुबास गुलाब में,
जो देखना चाहे, देखे मुझे मेरे काव्य में ।

प्रति दिन सूर्य निकलता है–
और समूचा विश्व सूर्य के चक्कर लगाता है,
ओ हो ! जन्म और मृत्यु इसी कारण से तो है ।
वही धारा धड़धड़ाती आती
अद्‌भुत दृश्य दिखाती,
और आनन्द की कैसी बाढ़ छा जाती है–
वह कैसा अट्‌टहास कैसी शान्ति !

स्वामीजी पत्रों को इस प्रकार लिखते जैसे कोई कवि कविता

करता हो ! इनके अमेरिका से भेजे एक पत्र में सम्बोधन का एक नमूना–

नक्षत्र वंचित आकाश मण्डल के नीचे,
एक नैसर्गिक आराम में,
एक पर्वतीय निर्झर के किनारे,
प्यारे कल्याण स्वरूप आत्मन् ।

राम के लेखों में आत्मसाधन और कठोर यातना से प्राप्त किया उमड़ता हुआ आनन्द का आह्लाद फूट पड़ा है । इनके लेखों में बच्चों की सी सरल अनुभूति का चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है । राम के जीवन में उन वासनाओं को कोई स्थान नहीं मिला है जो जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए जागृत की जाती है ।

एक बार अमेरिका में इन्हें ''भारतवासियों के हितार्थ अपील'' नामक पुस्तक एक महिला ने भेंट की तो इन्होंने उसे बहुत प्रेम सूचक शिष्टता से स्वीकार किया । ये बराबर उस पुस्तक को दाहिने हाथ में लिए रहे और उसी हाथ से सैकड़ों के जनसमूह में अभिवादन करते समय यह पुस्तक स्वतः ही बार-बार मस्तक को छूती रही । इन्होंने वहाँ कहा– 'स्वतंत्र रहने वाले अमेरिका से नागरिकों में उतना स्वतंत्रांश नहीं है जितना राम में, चिड़ियाओं में, हवाओं में है तुम स्वतंत्र हो सकते हो, हवा और प्रकाश को अनुचर बना सकते हो । बस ! राम हो जाओ । राम तुम्हें सूरज, चांद, तारे सबसे भेंट करायेगा । राम होने से सब तुम्हारे वश में हो जायेंगे । लो प्यारे ! राम होने की अनुपम भेंट स्वीकार करके देखो तो सही !' राम को काम करने के लिए समय नहीं मिलता था किन्तु रात दिन कुछ भी न करने में जुटे रहते थे । रात-दिन बन जाता रात्रि पुनः दिवस में परिणित हो जाती इन्हें पता न लगता । आँसू निरन्तर झरते मानों सबसे अधिक वर्षा वाले बादलों से स्पर्द्धा करते हों । रोंगटे खड़े रहते, आँखें खुली रहतीं, किन्तु सामने की चीजों में से कुछ दिखाई न देता था ।

स्वामी राम प्रकृति के अनन्य प्रेमी थे। सदा प्रफुल्लित रहते थे। जिस प्रफुल्लिता को कोई क्षीण नहीं कर सकता था और न बाटें बंट सकती थी। ज्यों ही इन्हें अवसर मिलता ये झट पहाड़ों जंगलों की ओर चले जाते–जैसे बाज अपने पर्वतीय घोंसले की और दौड़ता है। ये एकान्त में स्वास्थ्य और ज्ञान प्राप्त करते। प्रकृति में स्वास्थ्यदायिनी शक्ति है जबकि मनुष्य निश्चिन्त होकर पूर्णतः उसके प्रभावों के प्रति आत्मसमर्पण कर दे तभी उसको सबसे अधिक लाभ होता है। अमेरिका में भी राम नदी के किनारे पैर पसार कर लेटे प्रकृति के कलात्मक दृश्य देखा करते थे। एक स्थान पर स्वयं इस प्रकार लिखते हैं–

'देवदार और चीड़ के वृक्षों के नीचे आराम से लेटा हूँ एक शीतल पत्थर तकिए का काम दे रहा है। कोमल रेत ही मेरा बिस्तर है। एक टांग को दूसरी टांग पर रखे मौज से ताजी वायु की चुसकियां ले रहा हूँ। एक ओर ओ३म् का मधुरतम संगीत है दूसरी ओर कल-कल निनाद करता हुआ झरना राम के स्वर में स्वर मिलने को तैयार है।' इनमें इनकी आत्मा की सुगन्धि भरी थी। राम छोटी-छोटी चिड़ियों के समान प्रसन्न और छोटे-छोटे फूलों के समान स्वतंत्र रहे।

स्वामी रामतीर्थ ने उत्तर भारत में नव वेदान्त प्रचार का शंखनाद किया। इनके वेदान्त के लिए किये भाषण आज भी पांचजन्य घोष की तरह गूंज रहे हैं। जहाँ-जहाँ ये गये वहाँ के पत्थर इनकी कहानी कहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपना सन्देश कहते हुए ये अपने हर शब्द में, एक-एक शब्द में हृदय खोल कर रख देने की चेष्टा करते हों। अपना सन्देश इन्होंने स्वयं के अनुभवों से प्राप्त किया। इन्हें दूसरे के अनुभवों पर भरोसा न था। आत्मा के स्वरूप को पहचानने वाले ज्ञान से ये स्वयं आकण्ठ निमग्न थे। इन्होंने स्वयं शारीरिक कष्टों और तीक्ष्ण बाणों की चोट को सहन किया जिसका अनुभव बहुत ही कम लोगों को प्राप्त होता है। इतना होने के फलस्वरूप इनमें न कोई कटुता

आई, न रूक्षता। किन्तु इनके सन्देश नम्रता और आनन्द से भरे हुए हैं। इनके सन्देशों के शीर्षक–'आनन्द तुम्हारे भीतर है' अपने घरों को कैसे सुखी बना सकते हो' आदि रहते।

इन्होंने सारे पश्चिमीय और पूर्वीय दर्शनशास्त्रों का अध्ययन किया था। इन्होंने जहाँ शंकर कणाद, कपिल पातंजलि, जैमिनी, व्यास और कृष्ण के ग्रंथों को पढ़ा वहाँ कांट, हेंगल, गेटे, फिकटे, स्पाई, नोजा, कोम्टे, स्पेंसर, डार्विन, हीगल, टिंडल, हक्सले, स्टार, जार्डर और जेम्स के ग्रंथों का भी पूरा अध्ययन किया था।

ये जरा भी उन उदासियों में परिणित नहीं किए जा सकते जो वैराग्य के पथ का अनुसरण करके संसार के हर्ष और प्रसन्नता से सदा के लिये मुख मोड़ लेते हैं। इनमें अपनी अमूल्य निधि को दूसरों को भेंट करने की इच्छा स्पष्ट दिखाई देती थी। सभी बाह्य परिस्थितियों की उपेक्षा करके केवल उस आत्मा के साक्षात् का अनुरोध करते जो सच्चे आनन्द का भण्डार है। संसार को आनन्द प्रदान करने के लिए हर समय लालायित रहते। इनका हृदय उस समय पराकाष्ठा को पहुँच जाता जब आनन्द की व्याख्या करने लगते। वर्तमान और भावी मानव जाति की विश्वव्यापी एकता में अपने आपको विलीन कर देना चाहते थे। इनमें बुद्धि और भाव का अत्यन्त अनुशीलन मिश्रित स्वरूप था। जहाँ कहीं भी इनकी दृष्टि पड़ी सब ईश्वरमय ही दिखाई दिया।

इनके स्वभाव में उमड़ता हुआ क्षण-क्षण पर फूट पड़ने वाला ऐसा आह्लाद दृष्टिगोचर होता कि कठिनतम कष्ट और घोर से घोर अभाव भी इन्हें छू नहीं पाते। इनके लेखों में विवेकानन्द के लेखों की अपेक्षा ईसाई धर्म की ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनाई देती है। स्वामी राम तीर्थ लिखते हैं– ''हम कहते हैं, हे प्रभु! हमें आज का भोजन दीजिए।' दूसरे स्थान पर कहा गया है कि मनुष्य केवल रोटी के सहारे जीवित न रहेगा। इन दोनों कथनों पर विचार करने से पता लगता है कि प्रभु प्रार्थना का तात्पर्य यह नहीं कि तुम मांगते ही रहो, तरह-तरह

की इच्छाएं करो यह कदापि नहीं। भगवान् का ध्यान कर ऐसी प्रार्थना करे। इसका अभिप्राय यह नहीं हो सकता कि हम एक भिखारी बन जायें अथवा हम भौतिक समृद्धियों के लिए ईश्वर से याचना करें।

प्रार्थना का अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य चाहे वह राजकुमार हो, राजा हो या साधु हो अपने चारों ओर की वस्तुओं को अपना न समझे, सम्पत्ति और वैभव को अपना न समझे, ईश्वर का दिया समझे, अपना नहीं। इसे भिखारीपन नहीं कह सकते। यह तो पूर्ण त्याग है–पूर्ण संन्यास है। राजा जब ऐसी प्रार्थना करता है तब अपने आपको उस मनोदशा में पहुँचा देता है कि उसके धनागार के रत्न, सारी सम्पत्ति, राज भवन उसका नहीं रहता वह उन्हें छोड़ देता है। उन पर से अपना अधिकार हटा लेता है। वह मानो प्रार्थना करते समय परम साधु बन जाता है और कहता है ''सब ईश्वर का है जो कुछ मेरे हाथों में है सभी उसी प्यारे का दिया है।'' जिन्होंने अंग्रेजी न जानते हुए भी टोकियों में 'सफलता का रहस्य' पर स्वामी राम का भाषण सुना उन्होंने कहा–

स्वामी राम मुझे विशाल अग्नि पुंज के समान दिखाई देते थे और उनके शब्द छोटी-छोटी सजीव चिनगारियों के समान इधर-उधर उड़ते थे।

सबके प्रिय, विचारशील और गम्भीर से गम्भीर समय में भी हँसमुख सर्वथा विभिन्न विचारधारा रखने वाले श्रोता समाज को घंटों यहाँ तक कि सायंकाल के अंधेरे में भी जादू के समान मंत्रमुग्ध रखने वाले एक ही व्यक्ति थे 'स्वामी राम'। ये एक शांत नम्रता भरी जवानी में भोले भाले नवयुवक थे, जिन्होंने प्राचीन और अर्थाचीन दर्शन शास्त्रों एवं वर्तमान विज्ञानों के यथेष्ठ ज्ञान का संचय किया। ये वास्तव में उसी तत्त्व के बने थे जिससे सभी सत्यवादी, निष्ठाशील और कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति बनते हैं। प्रसन्नचित्त बच्चों की सी सरलता, बोलचाल और व्यवहार में निर्दोष होने पर भी इनके रेशमी जामे के भीतर वज्र सी कठोर संकल्प शक्ति थी। यही कारण था कि दूसरे की भावनाओं का सावधानी से आदर करते हुए ये अपने विचारों को

निर्भीकता से व्यक्त करने में सबसे आगे थे। इनका कथन था–

केवल एक रोग है और एक दवा। राष्ट्र केवल दैवी विधानानुकूलता से निरोग और स्वाधीन किये जा सकते हैं। उसी से लोग ऋषि और देवों से बढ़कर बनाये जा सकते हैं। ईश्वर में स्थित हो! बस सब ठीक है। दूसरों को ईश्वर में स्थित करो और सब ठीक हो जायेगा। इसी सत्य पर विश्वास करो। तुम्हारी रक्षा होगी। विरोध करोगे तो कष्ट पाओगे।

हे डगमग चंचल संशयात्मक चितो!
उत्साह शून्य धर्म परायणता–
और विधर्म परायणता को अब छोड़ो।
सब प्रकार का सन्देह और अगर-मगर निकाल डालो।
सब मतमतान्तर तुम्हारी सृष्टि है।
सूर्य चाहे पारे की थाली सिद्ध हो जाये।
पृथ्वी उदराकार या खोखला मण्डल–
प्रमाणित हो जाये।
वेद सम्भव है पौरुषेय ठहराये जा सकें।
किन्तु तुम ईश्वर के अतिरिक्त–
और किसी के नहीं हो सकते।
तुम्हारी ईश्वरीय भावनाओं से निकला हुआ–
एक भी स्वर और शब्द।
घास की पत्तियों बालू के कणों,
धूल के बिन्दुओं हवा के झकोरों,
पक्षियों पशुओं देवताओं मनुष्यों–
को ग्रहण करना होगा।
गुफाओं और वनों में गरजेगा।
घरों और गावों में घनघनायेगा।
बस्तियों गलियों में गूंजेगा।

नगरों नगरों में जायेगा ।

समस्त संसार को रोमांचित करता ।

वाह री वाह स्वाधीनता स्वतंत्रता ।

वन के पंछी की भाँति चहचहाते थे । हिरनी के बच्चे की भाँति फुदकते थे । सच तो यह है कि ये साधारण मनुष्यों की सी धीमी चाल में कभी नहीं देखे गये थे । इनकी उपस्थिति का प्रभाव अद्भुत दिखाई देता था; इनकी प्रफुल्लता संक्रामक थी । इनके विचार शीघ्र श्रोताओं के हृदय में घर करते, इनको ओम्-ओम् की ध्वनि में जादू था । प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु जो इनके पास आया, ओम्-ओम्-ओम् रटे बिना न गया । इनके दर्शन का अर्थ था जीवन को नये सिरे से आरम्भ करना । हृदय की क्षुद्रता, नीचता न जाने कहाँ लोप हो जाती थी । दर्शक अपने आप ऊपर उठ जाता था । ऐसा गलता था कि– एक नूतन, एक सर्वथा अलौकिक जीवन विषयक दृष्टिकोण इनकी आँखों से निकलकर उन लोगों की आँखों में प्रवेश करता था जो इनके आनन्द और माया से मंत्र-मुग्ध रह जाते थे । समूची श्रोत्र मण्डली में एक ही चमकता हुआ केन्द्र रहता–स्वामी रामतीर्थ ।

ये अपने समय के वेदान्ताचार्य थे । समस्त हिन्दू ग्रंथों के प्रत्यक्ष प्रमाण थे । विश्वात्मा से अभेदता रखने वाले श्रेष्ठ हिन्दुओं के ये आदर्श पूर्ण गौरव थे । बुद्ध धर्म के महान् व्याख्याता थे । पूर्ण सदाचार संयम और धर्माचरण के पक्षपाती और प्रचारक थे । मनोविज्ञान को मानव चरित्र का पथ प्रदर्शक बताते थे ।

अब रामतीर्थ उत्तर भारत में टिहरी गढ़वाल के आस पास रहते थे । ये निरन्तर ध्यान में डूबे रहते और वेदान्तिक चेतना के एक बन्धनहीन अल्हड़ आह्लाद का उपभोग कर रहे थे । इनकी अधिकांश कवितायें इसी समय लिखी गई थीं, जो उपनिषदों और ब्रह्म-विद्या से भरी हैं किन्तु सर्वोत्तम कविता तो ये स्वयं थे ।

जो इनके पास भेंट करने जाते उन्हें इनके पास से परमात्मा की मधुर सुबास आती । इनकी आँखें ज्ञान के विशुद्ध प्रकाश से चमकती

रहतीं, इनके मुख मण्डल पर सदा एक उच्च, पवित्रतम भावना का तेज बरसता रहता। पैरों के तले की घास को ये न जाने कितनी गम्भीर भावना से स्पर्श करते। यह गंगा जी को 'मेरी गंगी कहते' । कई अन्य वस्तुओं को भी इन्होंने ऐसे ही मीठे-मीठे नाम दे रखे थे।

इनके यहाँ आनन्द की भीड़ मची रहती थी। आत्मा की कम्पनशील मधुरता से सभी आनन्द अपने आप खिंचे चले आते थे। ये आनन्द को नहीं खोजते वरन् आनन्द स्वयं इनके सहचर्य में आता था। आनन्द की स्थिति में काम को एक ओर फेंक हिरनी की भाँति उछलते, हिम शिलाओं पर चढ़ते, गुफाओं में घुसते, नदियों में नहाते, कभी अंधेरी रातों में ही सड़कों पर दौड़ते जाते। भय और मृत्यु का सामना करते इन्हें अपने लिए कुछ न चाहिए था। इनके आनन्द ही इनके लिए देव रूप बन गये। अनेक बार लोगों ने इन्हें आनन्द से आत्म विस्मृत अर्द्ध चेतनावस्था में पाया। बिना कहे सुने शून्य गुफा में जा पड़ते, बिना खाये पिये कईं दिनों तक उसी में पड़े रहते।

लोग इनके पास जाते किन्तु इन्हें लोगों के पास जाने की इच्छा न थी। उस समय टिहरी के महाराजा इनके बड़े भक्त थे। महाराज प्रायः स्वामी जी के दर्शनार्थ आते किन्तु स्वामी जी अपने उलासमय दीर्घ अट्टहास और काव्य धारा के उज्ज्वल प्रकाश से राजा जी की भेंट के अवसर को उतना ही महत्व देते जैसे इन्हें उत्तम अश्व को देखने का निमंत्रण मिला हो। लाहौर छोड़ने के बाद तीन वर्ष के हिमालय प्रवास का अधिकांश समय प्रकृति के नंगे बदन पर ही बीता। जब ये मैदान में उतरे तो गुह्यतम रहस्य से भरे और आत्मविश्वास के बल पर ये कहा करते थे कि प्राकृतिक तत्त्व मेरे मित्र हैं। प्रकृति मेरी आज्ञाओं की प्रतीक्षा करती है।

सम्पूर्ण ब्रह्मांड मेरा शरीर है, नदियाँ नसे हैं, पहाड़ हड्डियां। जैसे मेरा हाथ खुजलाने के लिए स्वयं चला जाता है, उसी प्रकार प्रकृति स्वतः मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। हिमालय के शिखरों पर बर्फ के तूफान मेरे लिए सुकोमल स्वच्छ चादर बिछा देते हैं। पहाड़ों

पर, चट्टानों पर जूता पहन कर चलना पाप, घोर पाप है। नंगी भूमि के स्पर्श से नंगे पैरों में सर्वज्ञता उत्पन्न होती है, मेरी मांस को शिलाओं के मांस से स्पर्श पाना होगा। जब हम हृदय को मिलाकर एक दूसरे से बातें करते हैं तो हमारा प्रेम चुपचाप पृथ्वी के भीतर चलता हुआ दोनों के बदन स्थलों में प्रवेश कर जाता है। नर-नारायण है। यदि उसके हृदय का प्रेम ऊपर उठता है और ईश्वर के आशीर्वाद से पुनः एक दूसरी धारा में लौट आता है। मैं शिव हूँ मालाबार और कोरो मण्डल मेरी दोनों टांगे हैं, राजस्थान की मरुभूमि मेरा वक्षस्थल है, विन्ध्याचल मेरी कमर है, पूर्व से पश्चिम मैंने बाहें फैला रखी हैं, हिमालय मेरा जटाजूट सम्पन्न सिर है, मेरे ही जटाजूटों में गंगा लहराती है।

मैं भारत हूँ, मनुष्य हूँ, पशु हूँ, पक्षी हूँ, ईश्वर हूँ। ऐसी थी हमारे राम की वाणी। इनकी बातों में यदि एक ओर आँसुओं की वर्षा है तो दूसरी ओर इनके अट्टहास का प्रखर प्रकाश इसमें यदि शान्त, गम्भीर समाधि का तुषारपात है तो उदास पतझड़ की पत्तियों का बवण्डर भी। इन्होंने कहा था– लोग मेरी निरन्तर परिश्रम की यातना को नहीं देख पाते जो मुझे फूलों से हरे भरे बसन्त की प्रफुल्लता खिलाने में मेरी रगों को करना पड़ता है। संसार को मेरे आनन्द में ही हाथ बँटाना है वह मेरी घोर वेदना को नहीं जानता।

इनके पास एक संदेश था, जिसे यह देना चाहते थे। इनके पास आनन्द का भण्डार था, जिसे सारे संसार में बाँटना चाहते थे। सत्य की लगन भीतर ही भीतर इनके दिल की धड़कन थी। जैसे किसी अवतार में अपनी कार्य सिद्धि के लिए अनन्त बेचैनी होती है। उत्सुकता भीतर ही भीतर उग्ररूप धारण कर रही थी, वेदान्त के आचार्य बन रहे थे। किन्तु इनका वेदान्त इनका अपना वेदान्त था। नमाज में, भगवद्‌भक्ति में, उत्सर्ग में, आवेश में, काव्य में, शैली में मस्ती में अपने वेदान्त को देखते और समझते। इन्होंने हृदय की पतली चादर को फोड़ ज्ञान के गीतों और निबन्धों में बहना आरम्भ कर दिया था।

जब राम टिहरी में आनंद लुटा रहे थे तो भारत में एक घोषणा प्रकाशित हुई कि सन् 1893 के शिकागो धर्म सम्मेलन जैसा एक दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय धर्म सम्मेलन टोकियो में 1902 ई० में होगा। यह घोषणा जापान के स्वर्गीय ओकाकुरा के मित्रों ने की थी। टिहरी के राजा स्वामी जी के पास समाचार लेकर पहुँचे कि टोकियो में सब धर्मों की एक व्यापक सभा होने वाली है जैसे शिकागो में हुई थी। राजा साहब ने कहा कि उसके लिए जो तिथियां दी गई हैं उन पर आप जापान पहुँच सकते हैं। आप अविलम्ब चल दे और पूर्व की ओर जाने वाला जहाज पकड़ लें। स्वामी जी तैयार हो गये।

(5)
स्वामी रामतीर्थ जापान में

एक सप्ताह बाद ये जापान जाने वाले जहाज पर बैठे दिखाई दिये। बीच में पड़ने वाले सभी बन्दरगाहों पर भारतीयों सहित सब ने मिलकर इनका भव्य स्वागत किया। जापान में प्रवेश करते ही इन्होंने कहा–

राम इन लोगों को क्या सिखलायेगा। ये तो सब के सब वेदान्ती हैं। ये सबके राम हैं, कितने प्रसन्न, कितने सुखी, कितने शान्त, कितने परिश्रमी। इसी को राम, जीवन सच्चा जीवन कहता है।

जापान पहुँचने पर ये याकोहामा में एक दिन के लिए श्रीमती बसायामल अशोमल के अतिथि हुए। दूसरे ही दिन एक साथी को लेकर टोकियो आ गये। यहाँ से इन्होंने सीधे भवन की राह ली, जो उस समय इण्डो-जापानी क्लब के नाम से प्रसिद्ध था। अब यह क्लब सुसंगठित होकर इण्डो जापानी सोसाइटी के नाम से उन्नत हुआ है। इसका कार्य भी पूर्वपेक्षया अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

ज्योंही याकोहामा के आदमी ने भवन में प्रवेश कर दो भगवा वस्त्र धारी साधुओं का परिचय कराया त्योंही प्रसन्नता की लहर चारों ओर दौड़ गई। स्वामी राम के मुंह से चिड़ियों की स्वाभाविक चह-चहाहट की भाँति ओम्-ओम् की मधुर ध्वनि गुंजारित हो रही थी– उसका प्रभाव जादू से भी अधिक था। राम के साथ इनके शिष्य नारायण स्वामी थे। उनकी भाषा विचित्र थी, जन्म से साधु और मुख मण्डल पर अध्यात्मिक तेज था। लोग बड़ी देर तक उस विश्व सम्मेलन की चर्चा करते रहे जो जापान में होने वाला था। जब स्वामी जी को पता चला कि वास्तव में ऐसा कोई सम्मेलन नहीं हो रहा तो वे हँसकर बोले–प्रकृति की चालें भी कैसी-कैसी मजेदार होती है। राम को हिमालय के एकान्त से निकाल विदेश पर्यटन कराने की कैसी युक्ति सोची। यह समाचार क्या गुल खिला रहा है? राम तो स्वयं ही धर्मों का

विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व सम्मेलन नहीं करना चाहता तो न सही, राम अपना सम्मेलन तो करेगा ही।

स्वयं सम्मेलन कैसे रुक पायेगा

वह तो सम्मेलन करके ही जायेगा।

राम के पहुँचने के ठीक दूसरे दिन पूना के प्रोफेसर छत्रे टोकियो में अपने सर्कस का पहला प्रदर्शन करने वाले थे। सभी भारतीय छात्र और स्वामी राम उसे देखने गये। इस स्थान पर सुप्रसिद्ध पूर्वीय विद्वान् और टोकियो इम्पीरियल यूनिवर्सिटी के संस्कृत प्रोफेसर तकात्कुसु से राम की भेंट हुई। चलते समय उन्होंने कहा– "मैं इंग्लैंड के प्रोफेसर मैक्समूलर के यहाँ बहुत दार्शनिक, विद्वान् और पण्डितों से मिला हूँ, परन्तु मैंने ऐसा महान् व्यक्ति कहीं नहीं देखा। ये तो अपनी सम्पूर्ण दार्शनिक विचारधारा के ज्वलंत उदाहरण हैं और ऐसे अर्थपूर्ण कि कुछ कहते नहीं बनता। ये वेदान्त और बौद्ध धर्म के एकत्र हैं, ये स्वयं धर्म हैं। सच्चे कवि और ऐसे सच्चे दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता के दर्शन मैंने आज तक नहीं किए हैं।

श्री के० हिरनाई ने भी इनको वहीं देखा था और इनकी अलौकिकता, त्रिगुणातीत अवस्था की जी खुल कर प्रशंसा की। उन्होंने कहा था कि राम की अलौकिकता ने तो स्थूल शरीर को भी दिव्य बना दिया है। जब लोग पण्डाल से बाहर निकले तो रात बहुत हो गई थी। न रिक्शा मिली, न ट्राम, न कार। स्वामी जी पैदल चल पड़े। ये इतने तेज चलने वाले थे कि लोगों को इनके साथ-साथ चलना कठिन हो गया। प्रतिदिन सायंकाल लोग इनके पास इकट्ठे हो जाते। भारतीय और जापानी दोनों ही मंत्रमुग्ध होकर इनके व्याख्यान सुनते और होंठ ओम्-ओम्-ओम् का कम्पन करते रहते।

राम ने जापानियों की एक बात भारत में सुनी थी कि वे एक ऐसी वस्तु बनाते हैं जो इच्छानुसार स्टूल, छड़ी और छाता में बदली जा सकती है। वहाँ इन्होंने उसके बारे में पूछताछ की। लो इन्हें वही चीज मिल गई जिसे चाहते थे। ये उसे पाकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे बच्चे

खिलौना पाकर नाच उठते हैं। जोर-जोर से हँसते,कभी उसे स्टूल बनाकर बैठ जाते, कभी छाता और कभी छड़ी बनाकर बैठ जाते, कभी छाता और कभी छड़ी बना टेक-टेक कर चलने लगते। जब ये केन कोवा पार्क (जापाजी बाज़ार) में सौदा खरीद रहे थे तो सौदा बेचने वाली लड़कियां इनके पीछे-पीछे चल पड़ीं। एक सिरे से दूसरे सिरे तक बराबर पीछे-पीछे ही घूमती रहीं। राम ने सिर झुकाया और उनसे बोले राम के यहाँ सदैव इनका स्वागत होगा। राम तो इनका भी उतना ही है जितना औरों का। मिस्त्र में भी मुसलमानों ने इनका हार्दिक स्वागत किया था। वहाँ मस्जिद में राम ने फारसी में व्याख्यान दिया। दूसरे दिन समाचार पत्रों में छपा—स्वामी राम अलौकिक बुद्धिशाली हिन्दू हैं और उनसे मिलना बड़े गौरव की बात है। इन्होंने टोकियो के कॉमर्स कॉलेज में 'सफलता का रहस्य' नामक विषय पर व्याख्यान दिया। इनकी विचित्र आभा ने जनता को आकृष्ट किया। इस व्याख्यान की भूमिका को इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया—

> **क्या यह आश्चर्यजनक नहीं दिखता कि भारत से एक अभ्यागत आकर आपके समक्ष एक ऐसे विषय पर भाषण करे जिसे प्रत्यक्ष ही जापान ने भारत की अपेक्षा अधिक ग्रहण किया है। किन्तु एक से अधिक ऐसे कारण हैं जिनके बल पर मैं यहाँ शिक्षक के रूप में खड़ा हूँ।**

किसी विचार को दक्षता के साथ कार्यरूप में लाना एक बात है और उसके आधारभूत मौलिक अर्थ को हृदयंगम करना दूसरी बात है। चाहे कोई राष्ट्र वर्तमान समय में कतिपय मौलिक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता हुआ भले ही फल-फूल रहा हो किन्तु यदि राष्ट्रीय मस्तिष्क भली प्रकार उन सिद्धान्तों को समझता नहीं है, यदि उसके पीछे कोई ठोस आधार नहीं, तो उस राष्ट्र के पतन की सम्भावना बराबर बनी रहती है। एक धार्मिक जो रसायनिक क्रिया को सफलतापूर्वक करता है वस्तुतः वह रसायन शास्त्र वेत्ता नहीं। कोयला झोंकने वाला जो कुशलता से किसी वाष्प इंजन को चला लेता है वह

इंजीनियर नहीं हो सकता ।

तुमने उस डॉक्टर की कथा पढ़ी होगी जो शरीर के क्षत-विक्षत अंग को पूरे एक सप्ताह तक रेशमी पट्टी में बांधकर अच्छा किया करता था और नित्य उसे अपनी तलवार से छूना अनिवार्य मानता था। पट्टी के द्वारा बाहरी गर्द से रक्षा होने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे किन्तु वह कहता था कि तलवार में ही घाव को अच्छे करने की अद्‌भुत शक्ति है। ऐसा ही उसके रोगियों को विश्वास हो गया था। इस अंधविश्वास मूलक कल्पना से बीसों रोगियों को असफलता के सिवा कुछ हाथ न लगा, क्योंकि उनके घावों में पट्टी के अतिरिक्त अन्य उपचारों की आवश्यकता थी। अतः हर बात में यह आवश्यक है कि यथार्थ सिद्धान्त और यथार्थ अभ्यास सदा साथ-साथ चलें ।

दूसरी बात यह है कि राम जापान को अपना ही देश मानता है और उसके निवासियों को अपना देशवासी। राम तर्क पूर्ण आधार से यह सिद्ध कर सकता है कि प्रारम्भ में आपके पूर्व पुरुष भारत से ही यहाँ स्थानांतरित हुए थे। आपके पूर्व पुरुष राम के पूर्व पुरुष हैं। अतः राम एक भाई के समान न कि अपरिचित की भाँति हाथ मिलाने आया है। एक और कारण है जिसके बल पर भी राम इसी अधिकार का दावा कर सकता है। राम जन्म से ही, अपनी प्रकृति, चाल, ढाल, स्वभाव और हृदय से जापानी है।''

बस! राम का यह कहना था कि चारों ओर प्रसन्नता की किरणें बिखर गईं। लोगों ने व्याख्यान सुनने के लिए पैरों को और भी अधिक जमा लिया। हिन्दी न जानने वाले भी हज़ारों लोग मंत्रमुग्ध बैठे रहे चेहरे के भावों को पढ़ते! सुनते रहे! राम विशाल अग्निपुंज के समान दिखाई देते थे। इन प्रारम्भिक शब्दों के अनन्तर राम अपने विषय पर इस प्रकार आये।

सफलता का रहस्य :

सफलता का रहस्य एक खुला भेद है। इस विषय पर प्रत्येक

व्यक्ति कुछ न कुछ कह सकता है और तुम ने इसके साधारण सिद्धान्तों की व्याख्या भी सुनी होगी परन्तु विषय इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक है कि लोगों के हृदय में बैठाने के लिए उसे जितना बल दिया जाए कम रहेगा। प्रथम उपदेश हमें इस प्रकृति से लेना होगा। कल-कल ध्वनि से बहने वाले निर्झर, स्थानबद्ध रहने वाले तालाब अपनी मूक और असंदिग्ध भाषा में हमें निरन्तर एक उपदेश दिया करते हैं – निरन्तर काम करो ! निरन्तर कार्य निमग्न रहो !!

प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है । प्रकाश ही प्राणी का प्राण और मुख्य आधार है आओ देखें, स्वयं प्रकाश द्वारा इस प्रश्न पर क्या प्रभाव पड़ता है, उदाहरण के लिए एक दीपक लेंगे । दीपक की चमक और प्रकाश का अंतरंग रहस्य क्या है ? वह कभी अपने तेल और बत्ती का बचाव नहीं करता । तेल और बत्ती अर्थात् उसकी क्षुद्र आत्मा निरन्तर चलती रहती है तभी उसका प्राकृतिक परिणाम होता है– प्रकाश और प्रताप । लो, दीपक का संदेश हो चुका अपना बचाव करो, नहीं तो नाश हो जायेगा । यदि तुम अपने शरीर के लिए सुख और विश्राम चाहते हो तो तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं, दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि अकर्मण्यता मृत्यु रूप है । केवल काम और क्रिया ही हमारा जीवन है । एक ओर चौहदीदार तालाब है तो दूसरी ओर बहती हुई सरिता । दोनों की तुलना करो । नदी का जल स्वच्छ और मोती जैसा होगा पीने योग्य भी रहेगा न कि तालाब का । तालाब का जल तो बदबूदार मैला होता है । सफलता चाहते हो तो कार्य का मार्ग, सरितसा सी चित्ताकर्षक निरन्तर गति का अनुसरण करो । जो मनुष्य अपनी तेल और बत्ती का व्यय न करेगा, रक्षा में ही क्षणभंगुर जीवन नष्ट करेगा उसकी कोई आशा नहीं । 'नदी नीति' ग्रहण करो जो निरन्तर 'आगे बढ़ो' का सन्देश देती है । नदी सदैव परिस्थितियों के अनुकूल व्यवहार करती है । निरन्तर अटूट कार्य ही सफलता का पहला सिद्धान्त है । यदि तुम इसका अनुसरण करोगे तो बड़ा बनना उतना ही आसान होगा जितना छोटा रह जाना ।

'नित्य प्रति उत्तम से उत्तमतर बनते जाओ' ?

प्रत्येक व्यक्ति श्वेत वस्तुओं को प्यार करता है— सफेद क्योंकर मनुष्य का प्रेम पात्र है? हमें श्वेत की सफलता का पता लगाना होगा। काली वस्तुओं से क्यों घृणा होती है। यह एक तथ्य है इसकी खोज करनी होगी। प्रकृति विज्ञान हमें रंगों की प्रदर्शनता का रहस्य बताता है। लाल, लाल नहीं, वस्तुतः जिसे जैसा हम देखते हैं वैसा नहीं। गुलाब के पुष्प में लालिमा कहाँ से आती है? सूर्य की किरणों के सब रंग तो उसने अपने अंतस् में पचा लिए वह स्वयं फेंकी हुई चीज हैं किसी को भी गुलाब द्वारा पचाये इन रंगों का पता नहीं चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रंग आत्मसात् कर लेता है। केवल एक हरे रंग से प्रकट होता है जिसे वह अन्दर से बाहर फेंक देता है।

काली वस्तु का यह स्वभाव है कि वह प्रकाश के सारे रंगों को खा जाती है और प्रकाश का अस्तित्व नहीं रहता। उनमें आत्मत्याग की भावना नहीं रहती। वे रश्मि की एक रेखा भी नहीं त्याग सकती। सूर्य रश्मि जो अपने हिस्से में आती है सब का सब खा जाती है। प्रकृति हमें संदेश देती है— जो मनुष्य अपने में से रत्ती भर भी दूसरों को नहीं देता काला कोयला हो जाता है। सफेद वस्तु, सद्गुण ग्रहण करो सफलता साथ-साथ चलेगी। श्वेत का क्या अभिप्राय है? असंदिग्ध रूप में आत्मत्याग की भावना सीखलो, उसका मार्ग ग्रहण करो। जो कुछ दूसरों के लिए हो दूसरों को ही दे डालो, संचय के पथ से हट जाओ। अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज यदि चाहता है कि वह सुन्दरता के रूप में खिलें तो उसे अपने आप को खाद में गला डालना होगा। पूर्ण बलिदान का अन्त फल लाता है। सभी शिक्षकों, उपदेशकों द्वारा यह बात मान्य होगी कि जितना हम वितरित करते हैं उतना ही अधिक पाने के हम अधिकारी बन जाते हैं। पवित्रता और सत्यता सूचक सभी चिह्न इस विषय में हमारा पथ पर्दशन करते हैं।

विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं तो त्योंही "मैं भाषण कर रहा हूँ"

यह विचार उनके मन में जोर पकड़ता होगा तभी व्याख्यान फीका पड़ जाता है। काम करते हुए अपनी क्षुद्र आत्मा को भूल जाओ। पूर्णतः उसमें स्वयं को डुबा दो, अवश्य सफल होंगे। यदि कुछ सोचते हो तो स्वयं सोच-विचार बन जाओ, अवश्यमेव सफलीभूत होंगे। काम करते हो तो काम बन जाओ सफलता कदम चूमेगी।

मैं कब स्वतंत्र हूँगा?

जब मिट जायेगी "मैं" !!

एक बार अकबर के पास जाकर दो राजपूत नौकरी के लिए प्रार्थना करने लगे। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा वे शूरवीर हैं। अकबर ने कहा—प्रमाण। दोनों ने तुरन्त म्यान से तलवारें निकाल लीं। क्षणभर को बिजली कौंध गई। खंजरों की चमक उनकी अंतरंग वीरता की सूचक थी दूसरे ही क्षण बिजली की चमक के साथ दोनों के शरीर एक हो गए, दोनों ने तलवारों को एक दूसरे की छाती में घुसेड़ दिया। उनकी वीरता का प्रमाण पूरा हुआ। शरीर गिर पड़े, आत्मायें मिल गई, सबने उनकी वीरता की प्रशंसा की। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि अपने क्षुद्र अहम् का त्याग करो, सफलता हाथ जोड़ेगी। काम करते-करते सफलता की इच्छा भर जाये तो सफलता सामने खड़ी होगी।

प्रेम सफलता का दूसरा सिद्धान्त है। प्रेम करो। लोग तुमसे प्रेम करेंगे यही लक्ष्य है। हाथ यदि जीवित रहना चाहता है तो उसे शरीर के अन्य अंगों से प्रेम करना होगा। यदि वह अपने को पृथक् कर ले और सोचे कि तेरी कमाई का लाभ दूसरे अंग क्यों उठायें तो हाथ भी मर जायेगा। मरण अनिवार्य होगा। यदि हाथ अपनी स्वार्थ वृत्ति पर डट जाये तो उसे मुख में खाने और पीने की चीजें रखने की क्या आवश्यकता है जिसे वह केवल परिश्रम के बल पर प्राप्त करता है—चाहे वह परिश्रम कलम द्वारा किया हो या तलवार द्वारा। उस स्थिति में उसे भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ अपने चर्म में ही घुसा लेने चाहियें तभी वह दूसरे अंगों को वंचित कर सकता है।

यदि उसे अपना फुलाना ही इष्ट हो, तो किसी विषैली मक्खी से भी कटवा सकता है। किन्तु सूजन हानि ही पहुँचाएगी। सूजन की मोटाई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं। फूला हाथ अवश्य एक दिन स्वार्थ में मर मिटेगा। हाथ केवल तभी फल फूल सकता है जब वह व्यवहारतः आत्मीयता का अनुभव करे। जिसे हम सहयोग कहते हैं, वह इसी प्रेम का बाह्य रूपान्तर है। प्रेम रूप बन जाओ सफलता तुम्हारी बनी बनाई है। जो व्यापारी ग्राहकों के लाभ को अपना लाभ नहीं मानता वह सफल नहीं हो सकता। फलने, फूलने के लिए सबसे प्रेम करना होगा।

सफलता के सम्पादन में एक और बात जो महत्वपूर्ण कार्य करती है वह है –प्रसन्ता। मुझे प्रसन्नता है कि आप लोग प्रसन्नचित हैं। तुम्हारे हरे भरे चेहरों पर प्रसन्ता की मुस्कराहट देखकर राम बहुत खुश है। तुम मनुष्य जाति की मुस्कराने वाली कली हो। तुम प्रसन्नता के अवतार हो सो मैं चाहता हूँ कि आप अपने जीवन के शुभ लक्षण को प्रकृति के अन्त तक के लिए स्थिर रखें। लो मैं यह बताता हूँ यह कैसे हो सकता है –

अपने परिश्रम के फल के लिए कभी चिन्तित न हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। भय को हृदय में स्थान मत दो। न सफलता की बात सोचो न असफलता की। काम के लिए काम करो। काम स्वयं अपना पारितोषिक है। भूतकाल को सोच कर उदास मत हो जाओ। वर्तमान में, प्रत्यक्ष वर्तमान में कार्य करो। दिन रात काम करो। इस प्रकार की भावना तुम्हें हर परिस्थिति में प्रसन्न करेगी। एक सजीव बीज में फलने फूलने का गुण होता है। प्रेम पूर्ण सहानुभूति का अलग नियम है कि उस बीज को आवश्यकतानुसार पंच तत्त्वों को प्रदान करें। ठीक इसी भाँति प्रसन्नचित कार्यकर्ता को हर प्रकार की सहायता का वचन प्रकृति ने पहले ही दे रखा है।

आगे का मार्ग अपने आप ही सूझ पड़ेगा यदि जितना ज्ञान है उसे यथार्थ रूप में पूरा पार कर लेते हो। यदि अन्धेरी रात में दस मील

की यात्रा का अवसर पड़े और दीपक दस फुट तक ही प्रकाश फेंकता हो तो उस सम्पूर्ण अन्धेरे मार्ग की चिन्ता से क्यों मरे जाते हो? तुम्हें तो अंधेरे में एक भी पग नहीं धरना पड़ेगा। इस प्रकार एक सच्चे कार्य तत्पर कार्यकर्ता को कभी अपने पथ में व्यर्थ बाधा नहीं मिलती, यह प्रकृति का अनिवार्य नियम है। भविष्य की घटनाओं की चिन्ता से हार्दिक उल्लास को क्यों ठंडा करते हो?

वह मनुष्य जिसे तैरना बिल्कुल नहीं आता, सहसा झील में गिर जाये तो वह डूब नहीं सकता, यदि वह शरीर को समभारत्व के बराबर बनाये रखे। मनुष्य का भार विशेषत्व, जल के भार विशेषत्व से कम होता है किन्तु ऐसे अवसर पर साधारण व्यक्ति अस्थिर चित्त हो जाता है, पानी के ऊपर रहने की चेष्टा में ही पानी में डूब जाता है। इसी प्रकार प्रायः भविष्य की सफलता के लिए चिन्तातुर होने से ही असफलता का सूत्रपात होता है।

अब हम उस विचार धारा का निरीक्षण करेंगे, जिसके कारण हम भविष्य की ओर आँखें लगाये रहते हैं। इसका उदाहरण यों हो सकता है कि मनुष्य स्वयं अपनी छाया पकड़ना चाहता है। वह चाहे अनन्त काल तक ऐसा उद्योग करता रहे, वह त्रिकाल में भी उसे नहीं पकड़ सकता। सूर्य विमुख हो जाये तो? वही छाया उसके पीछे दौड़ना आरम्भ कर देगी। अर्थात् जिस क्षण तुम सफलता से मुंह मोड़ लेते हो और वर्तमान कर्त्तव्य पर सारी शक्ति लगाते हो तो उसी क्षण सफलता तुमसे आ मिलती है। अतएव सफलता का पीछा मत करो, सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ, उसी समय सफलता तुम्हें ढूंढने लगेगी। न्यायाधीश को वादी-प्रतिवादी, वकील, चपरासियों को खोजना नहीं पड़ता। वह केवल न्यायासन पर बैठ भर जाये सारा काम स्वयं चल पड़ता है। प्यारे मित्रो! यही अन्तिम तथ्य है। काम में जुट पड़ो—सफलता के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता होगी वह स्वयं आ मिलेगी।

एक और बात है जिसके लिए मैं बार-बार कहूँगा वह है 'निर्भीकता' । एक भ्रू-निक्षेप से शेरों को वश में किया जा सकता है । एक ही दृष्टि निक्षेप से शत्रु पराजित किए जा सकते हैं । निर्भीकता की एक ही झपट में विजय प्राप्त की जा सकती है । मेरा शेर, भालू, चीता आदि कई भयंकर जन्तुओं से सामना हुआ है परन्तु किसी ने भी हानि नहीं पहुँचाई । जंगली पशुओं की आँखों पर सीधे निक्षेप किया गया, दृष्टियां मिलीं, पशुओं ने आँखें नीची कर ली । जिन्हें हम भयानक वन्य पशु समझते हैं वह चुपचाप खिसक गये । निर्भीक बनो! कोई तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकता । शायद तुमने कभी देखा हो—कबूतर बिल्ली के सामने कैसे आँखें बंद कर लेता है शायद सोचता हो कि अब मैं बिल्ली को नहीं देखता तो बिल्ली भी नहीं देखती होगी । किन्तु होता क्या है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और खा जाती है । अतः निर्भीकता से शेर भी वश में किया जा सकता है और भयातुर के सामने बिल्ली भी शेर बनती है ।

कांपते हुए हाथों से कभी भी कोई द्रव्य पदार्थ एक बर्तन से दूसरे में सफलतापूर्वक नहीं उडेंला जा सकता । परन्तु एक सुदृढ़ और निर्भीक हाथ बिना एक बूंद भी गिराये द्रव्य का आदान-प्रदान कर लेता है । प्रकृति स्वयं हमें बार-बार ऐसे ही उच्च स्वरों में निर्भीकता की शिक्षा देती है ।

एक सिक्ख सिपाही की वीरता का प्रमाण लीजिए वह किसी जहाज पर भयानक रोग से आक्रान्त हो गया और डॉक्टर ने उसे जहाज से नीचे फेंक देने को कह दिया । सिपाही को इस बात का पता लग गया । वह शारीरिक रूप से रोगी था, लेकिन साधारण प्राणी भी कभी-कभी मृत्यु के सामने निर्भीकता की झलक दे जाता है । असीम शक्ति की प्रेरणा हुई । वह उठ बैठा और सीधा डॉक्टर के पास पहुँचा और पिस्तौल तान कर बोला—'क्या मैं बीमार हूँ? सच बोलो! नहीं तो

अभी मार डालूंगा।' डॉक्टर ने तुरन्त स्वस्थ होने का प्रमाण-पत्र दे दिया। निराशा ही हीनता है। निर्भीकता ही शक्तिपुंज है। शब्दों पर ध्यान दो—निर्भीकता! निर्भया बनो!!

सफल जीवन का नैसर्गिक, अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त, सफलता का प्राण और मुखय कुंजी है आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास। यदि एक ही शब्द में दर्शन शास्त्र का सार पूछा जाए तो वह शब्द 'आत्म-विश्वास' ही होगा। देखो! सुनो, स्वयं को पहचानो। सत्य अक्षरशः सत्य। जब तुम स्वयं अपनी सहायता करते हो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करता है। वह तुम्हारी सहायता के लिए बाध्य होगा। यह बात सिद्ध की जा सकती है। इस तथ्य का साक्षात किया जा सकता है कि तुम्हारी ही आत्मा, वास्तविक आत्मा, ईश्वर, सर्वशक्ति सम्पन्न अनन्त ईश्वर है। पूर्ण निश्चय से,अनन्त निश्चय से अपने ऊपर निर्भर रहो। जगत् में कुछ दुर्लभ नहीं संसार में कुछ असम्भव नहीं। सिंह स्वयं अपने पर निर्भर रहता है। उसमें साहस है, शक्ति है, अगम्य उत्साह है बाधा उसका मार्ग नहीं रोक सकती, क्यों? उसे अपने पर विश्वास है और हाथियों को देखो, चलते फिरते पर्वत भी शत्रुओं से संशकित रहते हैं। सर्वदा झुण्डों में रहते हैं सोते समय प्रहरी नियुक्त कर लेते हैं। एक भी तो उनमें से आत्मनिर्भर नहीं होता। उन्हें अपनी विशाल शक्ति का ही अनुभव नहीं। एक ही सिंह से झुण्ड का झुण्ड भाग खड़ा होता है। जबकि एक ही हाथी,चलता फिरता पहाड़, बीसों शेरों को रौंद कर मिट्टी में मिला सकता है।

एक शिक्षाप्रद कहानी और है। दो भाई थे, दोनों को पैतृक सम्पत्ति में समान भाग मिला था। कुछ काल बाद एक तो दरिद्रता की सीमा तक पहुँच गया दूसरे ने सम्पत्ति दुगनी बढ़ा ली। जिसने धन वृद्धि की थी उससे पूछा गया इतना अन्तर कैसे हुआ? पूछने पर पता लगा कि वह सदा आओ-आओ कहता था और दूसरा जाओ- जाओ।

तात्पर्य यह हुआ कि एक तो कहता था कि आओ—नौकरो मेरे साथ काम करो और दूसरा सदा कहता जाओ वह काम करो जाओ। एक अपनी शक्ति पर निर्भर रहता तो दूसरा दूसरों पर। अतः मैं भी कहता हूँ आओ-आओ सफलता और आनन्द का उपभोग करो। देशवासियों मित्रो, मनुष्य स्वयं अपने भाग्यका विधाता है। यदि लोगों ने मुझे विचार प्रकट करने के और अवसर दिए तो मैं सिद्ध कर दूंगा—किसी बाह्य शक्ति पर, देवी देवता या कथा-पुराण पर, आश्रित रहने के लिए कहीं कोई स्थान नही; अपना केन्द्र तो अपने अन्तस् में है। स्वतंत्र मनुष्य भी एक प्रकार से बद्ध है। उसी स्वतन्त्रता से हम श्री सम्पन्न बनते हैं और उसी से हम गुलाम हो जाते हैं। फिर हम क्यों रोयें-धोयें, क्यों झक मारें? सही वास्तविक स्वतंत्रता का ही उपभोग क्यों न करें जिससे शारीरिक और सामाजिक सभी बन्धन कट जाते हैं।

जो बात आप सुन रहे हैं वही शताब्दियों पूर्व यहाँ बुद्ध के अनुयायी लाये थे। किन्तु आज उसे वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए उसकी नयी व्याख्या होनी चाहिए। हम उसे पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन की प्रभा से आलोकित, अलंकारित कर देंगे।

यदि मुझे कहना पड़े
मनुष्य का सबसे बड़ा काम—
तो मेरे पहले ही नहीं-नहीं जगत।
वह सब है मेरी सृष्टि।
आकाश में सूर्य मैंने चमकाया,
समुद्र की गिरी गुहा से निकलकर।
वह मैं हूँ जिसके लिए
चन्द्रमा रंग बदला करता है नित्य, नित्य।

बस एक बार इसका अनुभव करो तुम इसी क्षण मुक्त हो, एक

बार इसे प्रत्यक्ष करो—सदा सर्वदा सफलीभूत हो। एक बार इसे हृदयंगम करो नरक की भयानक गन्दी कोठरियां, स्वर्ग के आनन्दकानन में परिणित हो जायेगी। राम लगभग एक पक्ष तक टोकियो में रहे। फिर उस जहाज में अमेरिका चले गये जो पूना के प्रोफेसर छत्रे ने अपना सरकस ले जाने के लिए किराये पर लिया था। स्वामी राम ने जापान में प्रस्थान करते हुए निम्न शब्द कहे—

"मैं जापान में पूर्णमदः पूर्णमिदम् गाता हुआ उतरा और पूर्णमदः पूर्णमिदम् गाता हुआ जा रहा हूँ।"

पूर्णमदः पूर्णमिदम् का अर्थ है—यह भी पूर्ण, वह भी पूर्ण, पूर्ण से निकले पूर्ण, फिर भी बाकी रहे पूर्ण।

(6)

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में

जहाज पर स्वामी राम को अमेरिकन यात्रियों ने अमेरिकन समझा। लोगों ने इन्हें देशवासी की भाँति प्यार किया।

सैनफ्रांसिस्को बन्दरगाह पर ये जहाज के डेकों पर बारी-बारी से आने जाने लगे जैसे इन्हें उन्हीं डेकों पर निवास करना हो। एक अमेरिकन इनकी इस विचित्र मस्ती से चकित होकर इनके पास पहुँचा और इनसे पूछने लगा 'आप अन्य सबकी भाँति उतरने की जल्दी क्यों नहीं कर रहे? क्यों साहब आपका सामान कहाँ है?

स्वामी जी ने उत्तर दिया– जो कुछ मेरे शरीर पर है उसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं रखता।

आप का रुपया कहाँ है?

मैं रुपया अपने पास नहीं रखता।

फिर आप का जीवन कैसे चलता है?

मैं सबसे प्रेम करके जीवित रहता हूँ। जब प्यासा होता हूँ तो सदा कोई न कोई पानी लिए मिल जाता है। जब भूखा होता हूँ तो भी कोई न कोई रोटी का टुकड़ा लिए सदा तैयार रहता है।

किन्तु क्या अमेरिका में भी कोई ऐसे मित्र हैं?

हाँ, क्यों नहीं, केवल एक ही अमेरिकन को जानता हूँ और वह हो तुम।' यह कहते हुए स्वामी जी ने उसके कंधे को छू दिया। इनके स्पर्श से अमेरिकन पर ऐसा जादू हुआ जैसे कोई भूली मित्रता का स्मरण हो आया हो। उस भद्र पुरुष ने लिखा है– 'स्वामी जी हिमालय की गुफाओं से उदय होने वाले ज्ञान सूर्य के समान हैं। उनको न अग्नि जला सकती है न अस्त्र-शस्त्र काट सकते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से ही हमें नव जीवन मिलता है।'

जब ये सैनफ्रांसिस्को पहुँचे तब वहाँ के स्थानीय समाचार पत्रों ने जनता पर स्वामी राम का प्रथम प्रभाव निम्न रूप से वर्णित किया–

अब दुनियाँ के प्राचीन विधान को उलट देना होगा। उत्तर भारत के जंगलों से एक मनुष्य, अद्वितीय विद्वान्, पैग़म्बर, दार्शनिक, वैज्ञानिक और महात्मा यहाँ आया हुआ है। यह परिव्राजक संयुक्त राष्ट्र में उपदेशक रूप में प्रचार करना चाहता है। वह यहाँ के लोगों को जो शक्तिशाली 'डॉलर' की देवता के समान पूजा करते हैं, एक आध्यात्मिक शक्ति, एक निस्वार्थ, परमार्थ भाव की नयी शिक्षा देगा। वह अपने देशवासियों में 'स्वामी राम' के नाम से प्रसिद्ध है।

हिमालय का यह उल्लेखनीय ऋषि, दुबला-पतला नवयुवक विद्वान् है, जिसके शरीर में महात्माओं की दमक है जिसके वर्ण में उच्च जाति के ब्राह्मणों जैसी हल्की चमक है। उसका माथा चौड़ा और ऊँचा, सिर पूर्ण विकसित और नाम पतली एवं स्त्री सुलभ कोमल है। मुस्कराहट के समय जब उसका दयालु और कोमल, तेजोमय और शुभ्र एवं पूर्ण दन्त पंक्ति युक्त मुख उन्मुक्त होकर खुलता है तब आस पास के सारे वायु मण्डल में दीप्ति सी छा जाती है। 'मैं कैसे रहता हूँ?' स्वामी राम कल कह रहे थे–

यह बहुत सीधी बात है मैं कोई प्रयास नहीं करता। मुझमें आत्मविश्वास है। मेरी आत्मा सदैव मनुष्यमात्र के लिए प्रेम सागर में गोते लगाती रहती है। इसी कारण सभी मुझे प्यार करते हैं क्योंकि जहाँ प्रेम होता है वहाँ कभी किसी बात की कमी नहीं रहती। आत्मविश्वास ने मुझे ऐसा प्रभाव दिया है कि मेरी आवश्यकतायें बिना मांगे पूरी हो जाती हैं। मुझे रुपया भोजन अथवा कोई चीज मांगने का निषेध किया गया है। फिर भी मेरे पास बहुत है। क्योंकि मैं ऐसे जगत् में रहता हूँ जहाँ सब की गति नहीं होती।

ये हिमालय के एकान्त से निकल सीधे वहाँ पहुँचे थे। गेरुए वर्ण के संन्यासी वेश में, जिससे होकर इनके अन्तर में प्रज्ज्वलित होने वाला आध्यात्मिक तेज फूट-फूट कर निकल रहा था।

‘एक हिन्दू देवदूत’ शीर्षक के अन्तर्गत पोर्टलैण्ड के एकसमाचार पत्र ने लिखा था–

छोटा और क्षीण शरीर, काली तेज पूर्ण उत्सुक आँखें, एक काला सूट और हर समय सिर पर एक चमकदार लाल पगड़ी, बस यही स्वामी राम की रूप रेखा है। भारतवर्ष का यह आदमी पोर्टलैंड में आया हुआ है यह भारतवासी नहीं भारत का प्रतिनिधि है। इस बन्दरगाह पर प्रायः यात्री आया ही करते हैं किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशाल हृदय, निःस्वार्थ और भावापन्न व्यक्ति शायद ही कभी यहाँ आया हो।

.... देश के भू-भाग में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो राम को बड़े प्रेम से याद करते हैं। वे कहते हैं रामतीर्थ का जीवन एक सच्चे त्यागी का जीवन था। उन्होंने केलीफोर्निया की पर्वतीय घाटियों में रहने वाले शिक्षाहीन व्यक्तियों का मन भी जीत लिया। वे स्थानीय सामयिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली अपने व्याख्यानों की प्रशंसात्मक आलोचनाओं को रद्दी के टुकड़े की भाँति समुद्र में फेंक देते थे। वे अपने भाषणों के लिए कभी भी कोई प्रवेश फीस न लेने का बड़ा आग्रह करते थे। उनके मित्रों ने जब ये उलाहना दिया– ‘स्वामी, इस प्रकार आपके व्याख्यानों के लिए सभायें करने का व्यय कैसे जुटाया जा सकता है?’ तब उन्होंने झट उत्तर दिया-‘‘तुम इन सभाओं का सारा व्यय स्वयं कर सकते हो।’

संक्षेप में जितने हिन्दू अमेरिका में आये वे सब से महान् थे। उनके जीवन सिद्धान्तों में उच्च झलक दिखाई देती है। उनकी आत्मा परमात्मा का प्रतिबिम्ब था।

(हरदयाल एम०ए०के अमेरिका से भेजे ‘मोडर्न रिव्यू’ जुलाई 1911 के लेख से अनूदित)

अमेरिका में स्वामी राम शास्तास्प्रिंग्स में ठहरे हुए थे। वहाँ ये एक साधारण मजदूर की भाँति काम करते थे। ये पर्वतों से लकड़ी काट कर अपना अतिथ्य करने वाले डॉ० हिलर के गृह भण्डार में एकत्र किया करते थे। शास्ता में राम को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। एक

बार राम शास्ता की चोटी पर चढ़ने में प्रथम आये। जिसमें इस चढ़ाई का वर्णन था, उस संवादपत्र की प्रतियाँ बहुत तेजी से बिकीं। एक बार राम 'मेराथन' रेस भी दौड़े थे। राम दौड़ने के अनन्य प्रेमी थे। पूरे तीस मील की रेस में भी राम ही प्रथम निकले। जब लाहौर में ये प्रोफेसर थे तब लोगों को यह आशंका थी कि इन्हें स्वास्थ्य से हाथ न धोना पड़े। लेकिन अपने दृढ़ संकल्प के बल पर इन्होंने अपने शरीर को ऐसा पुष्ट बनाया था। राम ने शास्ता नदी की तेज धार के आर-पार एक झूला टांग रखा था। उसमें बैठ ये चिड़ियों के साथ एक स्वर होकर चहचहाया करते थे।

यदाकदा ये वेदान्त पर व्याख्यान देने के लिए अपने पर्वतीय एकान्त से निकलते। ये 'भारत' पर भी भाषण करते थे। इन्होंने भारत की ओर से अमेरिकनों के प्रति एक अपील निकाली थी, जिसने उस समय लोगों का काफी ध्यान आकर्षित किया था। वृद्ध हिलर दम्पत्ति राम को बहुत चाहते थे कि राम का साथ सदा बना रहे। एक व्यक्ति ने इनसे पूछा—'क्या स्वामी जी अमेरिका सचमुच भारत की अपेक्षा उस तत्त्व का अधिक पालन कर रहा है जिसे आप वेदान्त कहते हैं?

स्वामी जी ने कहा—नहीं, अमेरिका तो मेरे वेदान्त का केवल भौतिक जगत् में व्यवहार करता है। राम चाहता है कि सभी राष्ट्र एक इस सच्चाई का मानसिक और आध्यात्मिक जगत् में व्यवहार करें। राम ने यह भी बताया कि देश स्वयं आध्यात्मिक या मानसिक दृष्टियों से भले या बुरे नहीं बनाये जा सकते। किसी देश में थोड़े से ही ऐसे स्त्री पुरुष होते हैं जिनका जीवन महत्वपूर्ण और परिचायक होता है। दूसरे तो यों ही होते हैं। और यह तो संयोग की बात है कि किसी भी देश में तुम्हारा व्यक्तिगत सम्पर्क उस देश के प्रथम श्रेणी के लोगों से होता है या दूसरी श्रेणी के अधिक लोगों से। इस प्रकार के परिचय के आधार पर जो धारणा बनाई जाती है वह तो सदा व्यक्तिगत ही रहेगी। स्वर्ग और नरक एक ही स्थान में एक ही बदन में एक साथ रहते हुए देखे जा सकते हैं। स्वामी जी आपने जो हिन्दू दर्शन शास्त्र की शिक्षा वहाँ दी उसका वहाँ के लोगों पर कैसा प्रभाव हुआ? अमेरिका को यह बात

समझने के लिए एक महान् आत्म साधन की आवश्यकता है। हाँ यदि वहाँ कुछ करना हो तो वहाँ के सब सुसंस्कृत व्यक्तियों को, विश्वविद्यालय के मनुष्यों को अपने पास खींचना होगा। जो राम को हज़ारों स्त्रियां मिली उनमें केवल दो सच्ची थीं विशेषकर गंगा, वह तो देवी थी।

एक दिन एक अमेरिकन अभिनेत्री स्वामी जी से एकान्त में भेंट करने आई किन्तु ज्यों ही उसने कमरे में प्रवेश किया रोने लगी, मैं बहुत दुःखी हूँ मुझे सुख दीजिए। मेरे मोतियों पर ध्यान न दो, मेरी मुस्कराहट पर ध्यान न दो। इन बाहरी बातों का अभ्यास तो मेरा स्वभाव बन गया है। राम ने उसे सान्त्वना दी। राम को ऐसा लगा जैसे पाश्चात्य सभ्यता ही इसके द्वारा पश्चाताप प्रकट कर रही हो।

एक दूसरी स्त्री आई ओर वह भी काफी दुःखी थी। उसका बच्चा मर गया था। वह राम से सुख के लिए प्रार्थना करने लगी। राम ने उसे कहा—राम आनन्द बेचता है परन्तु उसके लिए मूल्य देना पड़ता है। 'हाँ हाँ स्वामी जी मेरे से जो चाहे मूल्य में ले लें वह चिल्ला उठी। आनन्द के राज्य में यह सिक्का नहीं चलता तुम्हें राम के जगत् में चलने के लिए धन देना होगा। मैं दूंगी अवश्य दूंगी। राम ने उत्तर दिया—तो लो इस नीग्रो जाति के छोटे बच्चे को अपने ही बच्चे का सा प्यार करो। बस तुम्हें यही मूल्य चुकाना होगा। 'यह कितना कठिन काम है।' फिर भी उस बेचारी को कुछ आनन्द मिला। वह उस दिन के बाद पूर्वपेक्षया अधिक सुखी हो गई।

अध्यात्मवेत्ता स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में महिलाओं की शंकाओं का समाधान कर रहे थे। धर्म की अनेक गुत्थियां सुलझाते जा रहे थे। तब तक एक युवती पूछ बैठी—'कृष्ण्ण अधिकतर गोपियों के मध्य रहते थे। क्या युवतियों के मध्य घिरा रहने वाला व्यक्ति पवित्र हो सकता है? इसमें भी कोई शंका की बात है? व्यक्ति के चरित्र का संबंध तो उसके विचारों से है। विचारों की पवित्रता उसे कभी

विचलित नहीं होने देती।

मैं इस बात पर विश्वास नहीं करती। इतना सुनते ही बिना कुछ कहे सुने स्वामी जी अपना आसन छोड़ भागने लगे। काफी दूर निकल जाने के बाद वह खड़े होकर पीछे की ओर देखने लगे। उनमें से अधिकतर महिलायें स्वामी जी के पीछे-पीछे दौड़कर आ रही थीं। जब वे सभी महिलायें निकट आ गईं तो स्वामी जी ने पूछा—अच्छा बताइए क्या मैं अपवित्र हो गया। नहीं! बिल्कुल नहीं!! फिर योगिराज कृष्ण को गोपियों से घिरे रहने पर कैसे अपवित्र कहा जा सकता है।

अमेरिका में स्वामी राम के प्रयत्नों का अच्छा फल हुआ। वहाँ इन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की भलाई के लिए आन्दोलन उठाया था और उसकी सहायता के लिए कुछ सभाओं का संगठन किया था। भारत के जात-पात की कड़ी निन्दा की। वहाँ इन्होंने पूर्ण निष्काम प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत की भलाई के पक्ष में यथेष्ट उत्साह उत्पन्न कर दिया था।

राम को अमेरिकन विश्वविद्यालय से निमंत्रण मिला तो वहाँ इन्होंने भाषण दिया—भारत के प्रति संसार कितना ऋणी है। विश्वविद्यालय के सभापति ने इनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—इसके द्वारा हमें पाश्चात्य संस्कृति में वेदान्त की विचारधारा के प्रवेश के इतिहास की कड़ी मिल जाती है। जब कलर्क स्वामी राम को कुछ पुस्तकें भेंट करने के लिए लाया तो एक पुस्तक की जिल्द ढीली थी। सभापति ने कलर्क को कहा—'क्या तुमने राम का व्याख्यान नहीं सुना? तुम यह नहीं जानते ये पुस्तकें किसे भेंट की जाने वाली हैं? यह तो भगवान् राम को उपहार में दी जायेंगी। दूसरी प्रति लाइये। इतना आश्चर्यजनक प्रभाव स्वामी राम के व्याख्यान से होता था।

स्वामी रामतीर्थ की विद्वता तथा ओजस्वी वाणी से प्रभावित होकर अमेरिका की 18 यूनिवर्सिटियों ने मिलकर उन्हें एल०एल०डी० की उपाधि देने का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होंने सधन्यवाद अस्वीकार करते हुए कहा—"स्वामी और एम०ए० ये दोनों कलंक पहले ही नाम के आगे-पीछे लगे हुए हैं अब तीसरे कलंक को कहाँ रखूंगा?

यश, कीर्ति, लोकैषणा, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, पूजा, मान, बढ़ाई, के फेरे में पड़कर सन्तों और लोक-सेवियों का अहंकार उभरता है। इसलिए सच्चे सन्त मान-बढ़ाई से सदा बचते रहते हैं।

राम ने अन्य यूनिवर्सिटियों का भी निरीक्षण किया। भारत के सुविख्यात गणितज्ञ होने के नाते नहीं वरन् दार्शनिक की भाँति वेदान्त की ज्योति फैलाने के लिए। ये गणित से भी अधिक वेदान्त को चाहते थे। जहाँ भी ये गये लोग अपने आप इन्हें प्रेम करने लगे। अपने पर्यटनों में भी राम ने अनेक स्थानों पर ज्ञानार्जन के लिए प्रवचन किए। प्रवचनों द्वारा अमेरिका में वेदान्त प्रसार करने में भी काफी सहायता मिली। इनका व्यक्तित्व ऐसा जाज्वल्यमान और आकर्षक था कि एक-एक पर इनका ऐसा प्रभाव पड़ा जो धोया नहीं जा सकता। व्याख्यानों में राम की आत्मा की आवाज़ सुनाई पड़ती है। इनके विचारों में ऐसी प्रखरता थी कि बरबस हृदय में घर कर लेते थे। मिसेज बेलमेन अपने पत्र में लिखती हैं—

सन् 1906 ई० के आरम्भिक दिन थे जब मुझे सर्वप्रथम महान् आत्मा से मिलने का अवसर मिला तब ये सैनफ्रांसिस्को में भाषण दे रहे थे। मैं अनिच्छा से व्याख्यान सुनने गई। ओम्-ओम् की मन ऊपर उठा आत्मा में हर्ष की लहर दौड़ गई। एक स्वर्गीय आनन्द शक्ति ने मेरी आँखें खोल दीं। फिर तो मैंने जीवन के दिव्य रस का उपभोग करने का अवसर हाथ से न जाने दिया। उन्होंने अमेरिकनों से एक अपील की थी कि वे भारत में जाकर — भारतवासियों का पारिवारिक अंग बन कर उनकी सहायता करें। काफी लोगों ने कहा कि वे जायेंगे परन्तु गया कोई भी नहीं। मैंने स्वामी जी से कहा आपने जो मेरे पर उपकार किया उसके बदले में भारतवासियों का क्या कर सकती हूँ? उन्होंने कहा—तुम भारत चली जाओ बहुत कुछ कर सकोगी। मैं 'जाऊँगी' । मेरा उत्तर था। लोगों ने समझा मैं पागल हो गई हूँ इसलिए कि मेरे पास जाने आने के लिए रुपया न था। राम ने कहा — यदि

तुमने सचमुच वेदान्त समझा है तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा और ईश्वर ने किया भी – मेरे हिन्दू भाई और बहनों ने उत्सुकता से स्वागत किया। पांच महीने बाद ही मैंने राम के सामने किया प्रण, पूर्ण कर लिया। मेरे हृदय में विश्वास था। मैं राम के सिखाये अनन्त प्रभु की सर्व सामर्थ्य सम्पन्न भुजा पर अवलम्बित थीं।

राम एक पहाड़ी के किनारे खेमे में रहते थे और रेंचहाउस में भोजन करते थे। ऐसे स्थान पर राम ने एक के बाद कई बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ डाले, सैकड़ों कवितायें लिख दीं, घंटों समाधि लगाई। ये नदी के बीच एक चट्टान पर बैठते थे। जहाँ बहुत तेज हवा चलती थी। ये केवल भोजन के समय घर आते तब इनकी बातें सुनते ही बनती। शास्तास्प्रिंग्स में बहुत दर्शक राम के पास आया करते थे। इनके गम्भीर विचार सब पर गहरी छाप डालते। ये लम्बे पर्यटन करते थे। सीधा, सादा, स्वतन्त्र और क्रियाशील जीवन बिताते थे। ऐसे आत्मबलिदान का उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है। राम ऐसी अत्यन्त दुष्प्राप्य आत्माओं में से थे जो विशेष-विशेष अवसरों पर अवतरित होती है।

कहते हैं सूर्य उसका प्रतिबिम्ब मात्र है।
कहते हैं मनुष्य उसकी प्रतिमा में बना है।
कहते हैं वह तारों में टिमटिमाता है।
कहते हैं पुष्पों में मुस्कराता है।
कहते हैं वे कोयलों में गाता है।
कहते हैं शरद रात्रियों में रोता है।
कहते हैं चश्मों में दौड़ता है।
कहते हैं इन्द्रधनुष की चापों में आता है।
प्रकाश की बाढ़ में आगे-आगे चलता है।

यही राम गाते थे, है भी यही ठीक।

अमेरिका में इन्होंने लोगों को समझाया कि वह घर में रहकर विवाह सूत्र में बंधकर भी वेदान्त का अभ्यास कर सकते हैं। ये बड़े

पारखी थे। अमेरिका की भावनाओं का बारीकी से अध्ययन करते थे। इनका विश्वास था कि भारत को 'पश्चिमी यौवन सम्पन्न दानवों' से बहुत कुछ सीखना है।

प्रेम में विचित्र शक्ति है। भारत का प्रेम उस निस्पृह राम को विदेश ले गया। जब इन्होंने सुना कि मेरे भारत की विदेशी लोग निन्दा करते हैं, जब इन्हें अनुभव हुआ कि भारतीय संस्कृति पर बड़े-बड़े कटाक्ष और आक्षेप विदेशियों द्वारा किये जा रहे हैं तो मातृभूमि के सच्चे सपूत के हृदय में मातृ प्रेम उमड़ पड़ा। इन्होंने कहा—भारत पर वारे जायेंगे .... सूखे चले चबायेंगे।

भौतिकवादी कल्पना करते होंगे कि जेलों में जाने से या कठोर यातनाओं से स्वतंत्रता के दर्शन हुए हैं। किन्तु स्वतंत्रता तो स्वामी राम, विवेकानन्द सरीखे तत्त्ववेताओं के संकल्पों से मिली है। बुलबुला फूटकर सागर का रूप बन जाता है ये अखिल विश्व रूप बन गये। ये सब में समा गये अपने में भी ढूंढे तो आप उन्हें अवश्य पायेंगे। राम घोर वर्ष में हैं, छोटे-छोटे कणों में हैं।

उसने सब कुछ त्यागा तब और मिला उसको।
सागर के तट पर चंचल लहरों में बिखरा।
वह मिला उसी घासों की चंचल नोकों पर।
वह मिला तीव्रगामी झंझा की झोकों पर।
जो उनकी मृदु भौहों को छू चल देती थीं।
उसने जो पूछे प्रश्न, वही उत्तर बन बन।
उसके जग से लौटे हैं उसकी प्रतिध्वनि में।

(7)
साहित्यसृजन

स्वामी रामतीर्थ जी महान् प्रवचनकर्ता एवं लेखक थे । उन्होंने अपने जीवन में जापान, अमेरिका, भारत में अनेक व्याख्यान दिये थे । इसके अतिरिक्त अनेक ग्रंथ लिखे थे । इनमें से मुख्य प्रवचन संग्रह एवं ग्रंथ निम्नलिखित हैं ।

1. **सफलता का रहस्य**
   (अमेरिका व जापान में दिये गये प्रवचनों का संग्रह)
2. **ब्रह्मचर्य की शक्ति**
3. **अन्तरात्मा**
4. **आत्मनुभव**
5. **धर्मतत्त्व**
6. **भारत माता**
7. **भक्तियोगरहस्य**
8. **व्यावहारिक वेदांत**
9. **नवद धर्म**
10. **उपासना आदि**

(8)

आनन्द अपने अन्दर में

(सनफ्रांसिसको संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका की सायन्स एकेडमी में 17-12-1902 ई. को दिया हुआ व्याख्यान)

महिलाओं और सज्जनों के वेष में मेरे ही निज आत्मन् ॐ! राम योरपीय और ईसाई राष्ट्रों पर इसलिए कोई दोषारोपण नहीं करता कि वे अपने वीरसेनापतियों और सेनाओं के द्वारा दूसरे राष्ट्रों की विजय करने में क्यों लगे हुए हैं। प्रत्येक राष्ट्र के आध्यात्मिक विकास में यह भी एक अवस्था है, जो एक समय अति आवश्यक हो उठती है। भारतवर्ष को भी यह अवस्था पार करनी पड़ी थी। किन्तु भारतवर्ष एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है। उसने संसार की धन-सम्पत्ति को तराजू के पलड़े पर तोला और उसे खोखला पाया। ठीक ऐसा ही अनुभव इन राष्ट्रों को भी होगा, जो आजकल सांसारिक अभ्युदय और धन-सम्पत्ति बटोरने में संलग्न है। प्रश्न यह है कि ये सभी राष्ट्र अपनी सेनाओं के द्वारा दूसरे राष्ट्रों को जीतने के लिए क्यों सचेष्ट होते हैं? वे आखिर इस सारी दौड़-धूप में क्या ढूँढते हैं? उनका एकमात्र इष्ट है – आनन्द, हर्ष और आमोद-प्रमोद। निस्संदेह कुछ लोग कहते हैं कि वे आनन्द की खोज में नहीं हैं, उन्हें तो ज्ञान चाहिए। इसी प्रकार कुछ दूसरे कहते हैं कि उन्हें भी आनन्द इष्ट नहीं है, वे केवल कर्म के भूखे हैं। ऐसा कहने में कोई बुराई नहीं। किन्तु कृपया एक सामान्य मनुष्य, एक साधारण मरणशील प्राणी के हृदय और मस्तिष्क को टटोलिये। आप देखेंगे कि वह अन्तिम लक्ष्य– जिसके पीछे वे सब दौड़ रहे हैं, वह अन्तिम लक्ष्य – जिसे वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, जान-बूझ कर अथवा अनजाने खोजते फिरते हैं, वह अन्ततोगत्वा है एकमात्र आनन्द, आनन्द के सिवा और कुछ भी नहीं।

आइये आज इस संध्या को हम आनन्द के निवास का पता लगायें। यह देखें कि आनन्द राजप्रसादों में रहता है अथवा झोंपड़ियों

में । यह देखें कि आनन्द स्त्रियों के सौंदर्य, आकर्षण में निवास करता है अथवा उन चीजों में जो सोने-चांदी से मोल ली जाती है । आनन्द का आदि घर कहाँ है? आनन्द का भी अपना एक इतिहास है । वर्तमान युग निस्संशय बड़ी-बड़ी यात्राओं का युग है । वाष्प और विद्युत ने एक प्रकार से देश और काल की बाधा को दूर सा कर दिया है । सचमुच ये बड़ी-बड़ी यात्राओं के दिन हैं और प्रत्येक मनुष्य अपनी इन यात्राओं का वृतान्त भी लिखता है । आनन्द भी यात्रा करता है । आइये, हम आनन्द की यात्रा का भी कुछ पता लगायें ।

यहाँ हम आनन्द की उस प्रथम झलक से आरम्भ करते हैं, जो नवजात शिशु को बचपन में सर्वप्रथम प्राप्त होती है । बच्चे के लिए संसार का सारा सुख माता के आँचल में, प्यारी माता की गोद में सन्निहित रहता है । उसका सारा आनन्द वहीं निवास करता है । माता का आँचल, माँ की गोद इस प्रकार आनन्द के उस राजपथ का प्रथम पड़ाव ठहरती है, जिस पर आनन्द सतत गतिशील रहता है । बच्चे के लिए संसार में ऐसी कोई दूसरी वस्तु होती ही नहीं, जो उसे माता की गोद के सदृश आनन्द प्रदान कर सके। बच्चा माता के आंचल में अपना मुँह छिपाकर मानो कह उठता है—लो, मुझे ढूंढो, बताओ, मैं कहाँ हूँ? उसकी इस मुस्कराहट में कितना अह्लाद छिपा रहता है! वह अपने सम्पूर्ण हृदय और सम्पूर्ण आत्मा से खिलखिलाता है । उस समय पुस्तकें बच्चे के लिए निरर्थक होती है, रत्नागारों से भी उसका कोई प्रयोजन नहीं होता । फल और मिठाइयों में भी उसे कोई स्वाद नहीं आता, क्योंकि अभी उसने माता का दूध नहीं छोड़ा है । उसके सुख का सारा संसार केवल माता के आंचल में केन्द्रित रहता है ।

दो-एक वर्ष बीतते हैं और बच्चे का आनन्द अपना केन्द्र बदलने लगता है, वह किसी दूसरी वस्तुओं पर जा टिकता है । आनन्द का निवास अब खिलौनों, सुन्दर-सुन्दर खिलौनों, गुड्डे-गुडियों में दिखायी देता है । इस दूसरे पड़ाव में बच्चा अपनी माँ को उतना अधिक नहीं चाहता, जितना अधिक वह अपने खिलौनों के प्रति आकर्षित होता

है। यहाँ तक कि वह कभी-कभी इन खिलौनों, गुड्डे-गुड्डियों के पीछे अपनी माँ, अपनी प्यारी माँ से भी लड़ने झगड़ने लगता है।

इसी प्रकार कुछ और वर्ष बीतते हैं और आनन्द इन खिलौनों और गुड्डे-गुड्डियों को छोड़कर आगे निकल जाता है, वह फिर अपना केन्द्र बदल देता है, अब वह इन चीजों में निवास नहीं करता। इस तीसरे पड़ाव में, बच्चा जब बढ़कर एक बालक का रूप ग्रहण करता है, तब उसके लिए आनन्द का निवास उसकी पुस्तकों, विशेषकर कहानी-पुस्तकों में रहता है। हम यहाँ एक साधारण बुद्धिशील बालक की चर्चा करते हैं, विशेष अवस्थाओं में यह आनन्द दूसरी वस्तुओं में भी हो सकता है किन्तु हमें एक साधारण उदाहरण ही लेना है। इन दिनों बालक का सारा प्रेम सारा ध्यान कहानी पुस्तकों में ही केन्द्रित रहता है। खिलौनों, गुड्डे-गुड्डियों का आकर्षण न जाने कहाँ तिरोहित हो जाता है और उनका स्थान लेती हैं—ये कहानी पुस्तकें। इन्हीं को वह अब सर्वाधिक सुन्दर और आकर्षक समझता है। किन्तु आनन्द की यात्रा बराबर चलती रहती है।

स्कूल का बालक एक दिन कॉलेज में प्रवेश करता है और कॉलेज के जीवन में उसका आनन्द दूसरी वस्तुओं को अपना आधार बना लेता है, जैसे वैज्ञानिक ग्रंथ, दार्शनिक ग्रंथ। वह कुछ दिनों इन्हें प्रेम से पढ़ता है। परन्तु उसका आनन्द चराचर चलता रहता है। पुस्तकों के प्रेम की अपेक्षा अब वह विश्वविद्यालय में सम्मान प्राप्त करने की इच्छा से व्यग्र हो उठता है। वह आनन्द के इस निवास-स्थल पर पहुँचने के लिए चिन्तित रहता है, यही सम्मान उन दिनों उसके सुख का केन्द्र रहता है। लो, विद्यार्थी विश्वविद्यालय की अन्तिम परीक्षा प्रतिष्ठा के साथ पास करता है और उसे एक यथेष्ठ आय वाला पद भी मिल जाता है। अब इस नवयुवक का आनन्द रुपये पैसे को अपना केन्द्र बनाता है। उसके जीवन का एकमात्र स्वप्न होता है कि किसी प्रकार धन-सम्पत्ति संग्रह की जाये, धनवान् बना जाये। वह एक बड़ा आदमी, धनवान् आदमी बनना चाहता है। इस प्रकार जब किसी कार्यालय में थोड़े दिनों काम करने पर वह कुछ सम्पत्ति जमा कर लेता

है, तब तुरन्त उसका आनन्द अपनी यात्रा में एक पड़ाव और आगे बढ़ जाता है। वह पड़ाव क्या है? क्या उसे बताने की आवश्यकता होगी? वह है स्त्री।

अब इस नवयुवक को पत्नी की इच्छा होती है। पत्नी के लिए वह अपनी पसीने की कमाई को व्यय करने के लिए तत्पर हो जाता है। माता का अंचल अब उसे कोई सुख नहीं देता, खिलौनों में भी उसके लिए कोई आकर्षण नहीं होता, कहानी-पुस्तकें भी एक ओर पड़ी रहती हैं और यदि वे कभी पढ़ी भी जाती हैं तो केवल उस उद्देश्य से कि वे कहीं उसे अपने जीवन के एक मात्र स्वप्न स्त्री की प्रकृति के विषय में कोई सूक्ष्म ज्ञान कराने में समर्थ हो सकती हों। एक शब्द में, वह पत्नी के लिए पूर्णतः उत्सर्ग हो उठता है। अपने आनन्द की राजधानी में निवास करने वाली स्त्री की छोटी-मोटी सनकों के पीछे भी वह अपने कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को पानी की तरह बहाता है। नवयुवक के कुछ दिन आनन्द से स्त्री के साथ कटते हैं, परन्तु लो फिर आनन्द का केन्द्र कुछ आगे खिसक जाता है। प्रारम्भ में पत्नी के विचारमात्र से उसके हृदय में अह्लाद उठता था वह धीरे-धीरे कम होने लगता था।

एक साधारण नवयुवक का उदाहरण लीजिये, भारतवर्ष के एक सर्वसामान्य नवयुवक को देखिये, अब नवयुवक का आनन्द स्त्री से आगे बढ़कर भावी बच्चों पर जमता है। बच्चा अब उसके जीवन का मुख्य स्वप्न बनता है। वह अपने घर में एक बच्चा, मुन्ना, कृष्ण-कन्हैया की कामना करता है। राम को इस देश की वस्तुस्थिति का अधिक ज्ञान नहीं है, किन्तु भारतवर्ष में विवाह के कुछ दिनों बाद लोग सन्तान प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगते हैं। जो कुछ उनकी शक्ति में होता है, वे अपने इस इच्छा की पूर्ति में क्या कुछ उठा नहीं रखते? डॉक्टरों की सहायता लेते हैं, साधु-सन्तों से आशीर्वाद मांगते हैं। सन्तान का मुख देखने के लिए वे सभी संभव असम्भव उपाय करने को व्यग्र हो उठते हैं।

नवयुवक का आनन्द सम्पूर्णतः बच्चे की आशा में जमकर

बैठता है । इस प्रकार बच्चा आनन्द की यात्रा में,, अह्लाद के राजपथ में छठा पड़ाव होता है। जब नवयुवक अपने बच्चे के जन्म से भाग्यशाली होता है, तब उसकी प्रसन्न्ता का ठिकाना नहीं रहता। उसका हृदय उमंगों से भर उठता है, वह उछलकर अपने पैरों पर खड़ा होता है, वह आनन्द से फूल उठता है, धरती पर उसके पैर नहीं पड़ते, वह चलता नहीं मानो हवा में उड़ता है । बच्चे का मुख देखकर उसका सारा अन्तःकरण आनन्द से भर उठता है । अपने इस छठे पड़ाव में शिशु के चन्द्रवदन में इस वयस्क नवयुवक का आनन्द एक प्रकार से अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता हैं सबसे अधिक सुख तो उसे बच्चे के मुख पर मुस्कराहट देखकर होती है । साधारण मनुष्य के आनन्द का यही सर्वोच्च बिन्दु होता है ।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे नवयुवक की उमंगे ठंडी पड़ने लगती हैं और जब वही बच्चा स्वयं बढ़ता हुआ वयस्क बालक हो जाता है तब उसमें विशेष आकर्षण नहीं रह जाता। उस अवस्था में साधारण मनुष्यों का आनन्द फिर प्रायः एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में घूमता फिरता है, कभी एक विषय पर केन्द्रित होता है और कभी किसी दूसरी कल्पना को गले लगाता है । किन्तु आनन्द की वह अतिशय हार्दिक अनुभूति जो उसे अपने बच्चे के प्रेम से हुई थी, वह साधारण मनुष्यों को उतनी तीव्रता से अन्य किसी पदार्थ या विषय के संबंध में अनुभव में आती नहीं देखी जाती ।

आइये, अब हम जरा गम्भीरता से समीक्षा करें कि क्या सचमुच आनन्द इस प्रकार के पदार्थों में निवास करता है जैसे, माता का अंचल, गुड्डे-गुडिया, पुस्तकें, धन-सम्पत्ति, स्त्री या पुत्र अथवा इस संसार का कोई ऐसा ही अपेक्षित अनपेक्षित पदार्थ । यहाँ आगे बढ़ने से पूर्व राम आनन्द की इस यात्रा को सूर्य के परिभ्रमण से सादृश्य देना चाहता है । सूर्यप्रकाश भी निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करता रहता है । एक समय वह भारतवर्ष पर चमकता है तो दूसरे समय योरुप को अपने प्रकाश से जगमगाता है। वह सतत् यात्रारत रहता है।

सांध्याकालीन लम्बी-लम्बी छायाओं के बीच सूर्य किरण किस तेजी से स्थानांतरित होती देखी जाती है ।

अब हम आनन्द के आदि स्रोत आनन्द के घर के बहुत कुछ समीप पहुँच रहे हैं । उपनिषदों में कहा है –बच्चे के लिए बच्चा प्यारा नहीं होता, आत्मा के लिए बच्चा प्यारा होता है । पत्नी के लिए पत्नी प्यारी नहीं होती, पति के लिए पति प्यारा नहीं होता, पत्नी आत्मा के लिए प्यारी होती है, पति आत्मा के लिए प्यारा होता है, यह कठोर सत्य है । लोग कहते हैं हम किसी वस्तु को उसी के हेतु प्रेम करते हैं । किन्तु प्यारे, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता । धन दौलत धन-दौलत के लिए प्यारी नहीं होती, वह आत्मा के लिए प्यारी होती है । जो पत्नी किसी समय बड़ी प्यारी होती है, वही यदि पति की सुखभाजन नहीं रह जाती, तो त्याग दी जाती है । जो पति किसी समय बड़ा प्यारा होता है, यदि पत्नी के सुख का साधन नहीं रह जाता तो त्याग दिया जाता है ।

धन-दौलत जब हमारे काम की नहीं रहती, तो त्याग दी जाती है । तुम्हें नीरो का उदाहरण याद है । उसे अपनी राजधानी रोग जैसा सुन्दर नगर नीरस मालूम होने लगा, उसके लिए रोम हृदय में एक विशाल अग्नि-काण्ड देखने की लालसा उत्पन्न हुई । रोम की सुन्दरता की अपेक्षा उसे एक विराट अग्निपुंज देखना अधिक भला मालूम हुआ । और क्या हुआ ? यह एक समीपवर्ती पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गया और अपने इष्ट मित्रों को आज्ञा दी कि जाकर सारे रोम शहर में चारों ओर से आग लगा दो, जिससे वह एक बृहत अग्निदाह का आनन्द ले सके । इधर वह तानपुरा बजाता है और उधर रोम जलता है । यहाँ हम स्पष्ट देखते हैं कि धन-सम्पत्ति से भी तुरन्त सम्बन्ध विच्छेद किया जाता है, वह त्याग दी जाती है, यदि वह हमारे सुख की साधन नही रह जाती ।

राम ने अपनी आँखों एक बहुत ही विचित्र तमाशा, एक बड़ा अद्‌भुत दृश्य देखा है । चारों ओर पानी ही पानी फैला था, गंगा जी में भीषण बाड़ आई हुई थी और नदी बराबरबढ़ रही थी । एक वृक्ष की

शाखाओं में बहुत से बन्दर बैठे हुए थे। उनमें एक बंदरिया और उसके कई बच्चे भी थे। ये सभी बच्चे उसके पास सिमट कर आ गये थे। धीरे-धीरे पानी उस स्थान पर आया, जहाँ यह बंदरिया बैठी थी। तब वह बंदरिया कूदकर एक ऊँची शाखा पर चढ़ गयी, पानी वहाँ तक पहुँच गया। तब वह बंदरिया पेड़ की सबसे ऊँची डाली पर जा बैठी। परन्तु पानी बढ़ते-बढ़ते उस डाली को भी छूने लगा। उसके सभी बच्चे बंदरिया के बदन से चिपके हुए थे।

जब पानी उसके पैरों को छूने लगा, तब उसने झट से एक बच्चे को, एक नन्हे से बन्दर को पकड़ा और उसे अपने पैरों के नीचे दबा दिया। पानी और भी ऊपर चढ़ा, तब बंदरिया ने दूसरे बच्चे को दबोचकर अपने पैरों के नीचे रख लिया। पानी चढ़ता ही गया, और बंदरिया ने अपने तीसरे बच्चे को भी दबोचा और निर्दयता से अपने पैरों तले दबाया कि किसी प्रकार उसकी जान बच जाए। दुनियाँ का यह हाल है! यहाँ सगे-संबंधी और संसार की वस्तुएं हमें तभी तक प्यारी होती हैं, जब तक ये हमारे काम आती हैं, हमें सुख देती हैं। ज्योंही उनसे हमारे सुख साधन में कोई बाधा होती दिखाई देती है, त्यों ही हम उनका-बलिदान कर देते हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आनन्द का निवास, आनन्द का स्रोत कहीं हमारे ही भीतर, हमारी आत्मा में है। आनन्द का आदि घर कहीं आत्मा में ही है। किन्तु वह है कहाँ? क्या वह पैरों में है? पैर सारे शरीर को सम्भालते हैं, वह पैरों में हो सकता है। किन्तु नहीं, वह पैरों में नहीं है। क्योंकि यदि वह सचमुच पैरों में होता, तो पैर ही हमें संसार में सबसे अधिक प्रिय होते। निस्संदेह पैर हमें और सभी बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक प्रिय होते हैं किन्तु वे इतने प्यारे नहीं होते जितने कि हाथ। तो क्या आनन्द का आदि निवास हाथों में है। हाथ पैरों की अपेक्षा अधिक प्यारे होते हैं, किन्तु वे भी आनन्द के घर नहीं कहे जा सकते। तब क्या आनन्द नाक या आँख में निवास करता है? निस्संदेह आँखें हाथ या नाक की तुलना में

अधिक प्रिय होती हैं, पर उनमें भी आनन्द का निवास नहीं है। अच्छा आप कोई ऐसी चीज सोचिये, जो नेत्रों से भी अधिक प्रिय हो? आप कह सकते हैं – वह है प्राण।

राम कहता है—पहले सारे शरीर की परीक्षा कीजिए। सारा शरीर भी आनन्द का घर नहीं है। हम जानते हैं कि सारा शरीर क्षण-क्षण बदलता रहता है। कुछ ही वर्षों में शरीर का प्रत्येक कण एक नये कण के रूप में बदल जाता है। तब क्या आनन्द का निवास बुद्धि, मस्तिष्क या मन में हो सकता है। क्या सचमुच ऐसा है? आओ, पहले वह देखें कि क्या कोई ऐसी चीज नहीं है जो हमें बुद्धि से भी अधिक प्यारी हो। पहले इसी बात की परीक्षा करें। क्योंकि यदि कोई वस्तु बुद्धि की अपेक्षा अधिक प्रिय और मधुर है, तब सम्भवतः वही आनन्द का निवास कही जा सकती है। हम उसे जीवन अथवा हिन्दुओं की शब्दावली में प्राण कहते हैं, क्योंकि प्रायः लोग बुद्धि या विचार-शक्ति का उत्सर्ग करके भी जीवन की कामना करते हैं। यदि हमें दो विकल्पों में चुनने का अवसर दिया जाये – (1) या तो एकदम मर जाओ या (2) एक पागल, उद्भ्रान्त मनुष्य की भाँति जीवन व्यतीत करो, तो प्रायः प्रत्येक मनुष्य जीवन का विकल्प ही पसन्द करेगा, फिर चाहे उसे पागल, उद्भ्रान्त दशा में ही क्यों न रहना पड़े। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के मन्दिर में बुद्धि और विवेक का सहज ही बलिदान हो सकता है। तब निस्संदेह जीवन व्यक्तिगत जीवन को ही आनन्द का आदि निवास कहना चाहिए, जिससे सूर्य की भाँति आनन्द की किरणें फूटती रहती हैं। परन्तु एक बार फिर देखो कि जीवन सचमुच आनन्द का मूल निवास है या नहीं। वेदान्त कहता है—नहीं, नहीं प्राण भी आनन्द का घर नहीं है। आनन्द का निवास, स्वर्ग, आन्तरिक स्वर्ग उससे भी ऊपर, वैयक्तिक, व्यक्तिगत जीवन से बहुत ऊपर है। अच्छा तो वह है क्या?

एक बार राम ने एक नवयुवक को मरणासन्न अवस्था में देखा था। वह एक भयंकर रोग से कष्ट पा रहा था। उसके शरीर में बेचैनी

का दर्द था। दर्द उसके पैरों की उँगलियों से आरम्भ हुआ। आरम्भ में वह इतना तेज न था किंतु कुछ ही समय में वह ऊपर चढ़ने लगा और तब उसका सारा शरीर—नख से शिख तक कांप-कांप उठता था। धीरे-धीरे वह दर्द घुटनों पर आ गया, फिर ऊपर चढ़ते-चढ़ते वह भयंकर पीड़ा एक दिन उसके पेट तक पहुँच गयी और ज्योंही उसने हृदय को स्पर्श किया, उसका प्राणान्त हो गया। अन्तिम शब्द जो उस नवयुवक के मुँह से निकले, ये थे—ओह, ये प्राण कब निकलेंगे, ये प्राण कब मेरा पीछा छोड़ेंगे? ये उस नवयुवक के अन्तिम शब्द थे।

आप जानते हैं कि आपके देश में लोग कहते हैं — उसने भूत को छोड़ दिया। भारतवर्ष में हम कहते हैं—उसने शरीर छोड़ दिया। इससे भेद स्पष्ट हो जाता है। यहाँ शरीर को ही वास्तविक आत्मा माना जाता है और भूत को उस रूप में देखते हैं जो ऊपर से उस पर सी दिया गया हो। भारतवर्ष में शरीर की आत्मा से सर्वथा पृथक् एक ग़ैर चीज के रूप में देखते हैं और आत्मा को ही हम एकमात्र सत्य, सत् मानते हैं। जब कोई मर जाता है तब कोई ऐसा विश्वास नहीं करता कि उसका सम्पूर्ण नाश हो गया, केवल शरीर नष्ट हो गया, वह तो कभी नहीं मर सकता। इसीलिए जो शब्द इस नवयुवक के ओठों से निकले, वे थे— ओह, मैं कब इन प्राणों को छोड़ूंगा, ये प्राण कब मेरा पीछा छोड़ेंगे?

यहाँ हमें ऐसी चीज का पता चलता है, जो जीवन से भी ऊँची है, जो प्राणों से भी श्रेष्ठ है। वह कोई ऐसा तत्त्व है, जो कहता है—मेरा जीवन, कोई ऐसा तत्त्व है, जो कहता है 'मेरे प्राण'। यह कोई ऐसा तत्त्व है, जो प्राणों का स्वामी है, जो प्राण या जीवन से भी ऊपर है। निस्संदेह वह तत्त्व वैयक्तिक या व्यक्तिगत जीवन या प्राण से कहीं अधिक, अत्यधिक मधुर और प्रिय हैं। यहाँ हमने अभी देखा है कि जब जीवन या प्राण उस नवयुवक के उस शरीर विशेष में उसकी आत्मा, प्राणों से भी उच्चतर आत्मा के किसी काम के न रह गये, तब उसने प्राण या जीवन के त्याग की कामना की, उसने प्राण या जीवन

को छोड़ दिया। यहाँ एक ऐसा तत्त्व है, जो प्राण से कहीं श्रेष्ठ है और जिसके लिए जीवन का भी उत्सर्ग किया जाता है।

अब इसमें कुछ भी संशय नहीं कि यही परम तत्त्व प्राण से कहीं अधिक प्रिय और मधुर है और इसी को आनन्द का मूल निवास होना चाहिए, जहाँ हमारे अह्लाद का आदि स्रोत आदि उद्गम-स्थल है। यहाँ हम यह भी स्पष्ट देख सकते हैं कि प्राण अथवा जीवन बुद्धि की अपेक्षा क्यों अधिक प्रिय मालूम होते हैं, क्योंकि प्राण उस वास्तविक आत्मा, उस अन्तरात्मा से अधिक समीपवर्ती है। बुद्धि नेत्रों की अपेक्षा क्यों अधिक प्रिय मालूम होती है; क्योंकि बुद्धि नेत्रों की तुलना में उस वास्तविक आत्मा के अधिक समीपवर्ती है। और नेत्र पैरों की अपेक्षा क्यों अधिक प्रिय हैं, क्योंकि नेत्रों में हमारी वास्तविक आत्मा की झलक पैरों की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है। बताइये, क्यों प्रत्येक मनुष्य अपने बच्चे को किसी और के बच्चे से, अपने पड़ोसी के बच्चे से क्यों अधिक सुन्दर समझता है। वेदान्त कहता है—उस विशेष बच्चे को, जिसे तुम 'अपना' कहते हो, उसको तुमने अपनी वास्तविक आत्मा के स्वर्ण से बहुत कुछ अलंकृत कर रखा है। वह पुस्तक जिसमें तुमने एकाध पंक्ति लिखी हो, यह पुस्तक जिसमें तुम्हारी कलम से निकला हुआ एकाध लेख हो, वह तुम्हें, अन्य ग्रंथों से बढ़कर, यहाँ तक कि अफलातून द्वारा रचित ग्रंथों से भी कहीं अधिक उपयुक्त क्यों मालूम होता है, आखिर क्यों ऐसा होता है? क्योंकि इस पुस्तक में जिसे तुम 'अपनी' पुस्तक कहते हो, उसमें तुम्हारे वास्तविक आत्म-सूर्य का प्रकाश फैला हुआ है। वह अन्तरात्मा की प्रभा से अलंकृत हुई है। इसीलिये हिन्दू लोग कहते हैं— शिव, कल्याण, आनन्द की वास्तविक राजधानी तो तुम्हारे भीतर है, सुखधाम स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, आनन्द का स्रोत तुम्हारे अन्तर में है। जब ऐसी बात है, तब उस आनन्द को कहीं बाहर, कहीं अन्यत्र ढूंढना कितना असंगत और तर्कहीन है—जरा सोचिये तो!

भारतवर्ष में एक प्रेमी के विषय में ऐसी कथा कही जाती है।

वह अपनी प्रेमिका के लिए बहुत तड़पता था। उसका सारा शरीर सूख कर कांटा हो गया था, मांस नाम की कोई चीज़ जैसे उसके शरीर में थी ही नहीं। उस देश के राजा ने, जिसमें वह नवयुवक रहता था,एक दिन उस नवयुवक को अपने दरबार में बुलाया और उसकी प्रेमिका को भी बुलाकर उस नवयुवक के सामने उपस्थित किया। राजा ने देखा कि वह स्त्री देखने में बड़ी भद्दी है। तब राजा ने उस नवयुवक के समक्ष उन सभी सुन्दरियों को बुलवाया जो उसके दरबार को सुशोभित करती थी और उस प्रेमी से कहा कि उनमें से कोई एक अपने लिए पसन्द कर लो। तब जानते हैं उस नवयुवक ने राजा से क्या कहा—ऐ राजन्, ओ महाराजन्, अपने आपको ऐसा मूर्ख न बनाइये, ऐ राजन् आप जानते हैं कि प्रेम मनुष्य को एकदम अंधा बना देता है, ऐ राजन्, तुम्हारे पास मेरी प्रेमिका को देखने के लिए आँखें ही नहीं है। उसे मेरी आँखों से देखो और फिर बताओ कि मेरी प्रेमिका सुन्दर हैं या असुन्दर। उसे मेरे नेत्रों से देखो।

बस, यही संसार के सभी आकर्षणों का रहस्य है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। संसार के सभी आकर्षक पदार्थों के सौंन्दर्य का इतना ही गुप्त भेद हैं। ओ भोले भाले मनुष्य, तू स्वयं अपनी दृष्टि से, अपने देखने के ढंग से सभी पदार्थों को आकर्षक बनाया करता है। ग्रीस देश की पौराणिक गाथाओं में हमें 'इको' की कहानी पढ़ने को मिलती है। वह बेचारी अपनी ही छाया के प्रेम में पागल हो गई थी। बस सौंदर्य मात्र का यही भेद है। ये सुन्दर पदार्थ स्वयं तुम्हारी ही अन्तरात्मा की परछाई हैं, तुम्हारे आन्तरिक स्वर्ग की छाया हैं। वे केवल तुम्हारी छाया हैं। उससे अधिक कुछ भी नहीं। जब बात ऐसी है तब अपनी ही छाया के पीछे पागल होना कितना असंगत और तर्कहीन है।

राम को एक शिशु, एक नन्हें बच्चे की बात याद आती है। वह अभी घुटनों के बल, हाथ, पैरों के बल घिसटता सीख ही रहा था। बच्चे को अपनी छाया दिखायी दी और समझ पड़ा कि यह तो कोई

विचित्र चीज़ है, अद्‌भुत वस्तु है । तब वह बच्चा उस छाया के सिर को अपने हाथ से पकड़ने की चेष्टा करने लगा। वह छाया के सिर को अपने हाथ से पकड़ने की चेष्टा करने लगा । वह छाया के सिर की ओर घिसटा, छाया कुछ आगे खिसक गयी । बच्चा और आगे बढा, छाया भी और आगे बढ़ गई । बच्चा रोने लगा, क्योंकि छाया का सिर उसके हाथ न आता था । बच्चा गिर पड़ा, छाया भी नीचे गिर पड़ी । बच्चे ने फिर अपना सिर उठाया और घिसट-घिसटकर छाया का सिर पकड़ने की कोशिश करने लगा । इसी बीच में उसको माँ ने देखा, उसे बच्चे पर दया आ गयी, उसने बच्चे का हाथ बच्चे के सिर पर रख दिया और लो !

छाया का सिर अपने आप पकड़ा गया। अपना ही सिर पकड़िये, छाया भी पकड़ी जायेगी । स्वर्ग और नरक तुम्हारे भीतर है । मनुष्यों का, राष्ट्रों का और प्रकृति का ईश्वर तुम्हारे अन्तर में है । ऐ दुनियाँ के लोगो, सुनो, कान लगा कर सुनो । यह एक ऐसा पाठ है, यह एक ऐसा तथ्य है, जो मकानों की छतों से, राजमार्गों पर और नगर के सभी चौराहों पर घोषित करने योग्य है—वह पाठ यह है, जो ऊँची से ऊँची आवाज़ में घोषित करने के योग्य है—यदि तुम किसी पदार्थ को पाना चाहते हो, यदि तुम किसी चीज के इच्छुक हो, तो छाया के पीछे मत दौड़ो । अपना ही सिर छुओ । अपने भीतर धंसो । अपनी आत्मा को देखो और फिर तुम देखोगे कि ये जगमगाते तारे तुम्हारी ही कारीगरी है, तुम देखोगे कि प्रेम की सभी वस्तुएं, संसार की सभी लुभाने और मोहनेवाली वस्तुयें केवल तुम्हारी ही छाया और प्रतिमूर्ति मात्र हैं । अंग्रेजी के एक कवि की उक्ति है—

टोपी और छड़ी का मूल्य चुकाते हैं हम अपने जीवन से,
सम्पूर्ण जीवन के परिश्रम से मिलते हैं हमें कुछ बुलबुले ।

भारतवर्ष में एक स्त्री का बड़ा सुन्दर किस्सा प्रचलित है । उसके घर में उसकी एक सुई खो गई । वह इतनी ग़रीब थी कि अपने घर में दीपक भी न जला सकती थी । सो वह घर से बाहर निकल पड़ी और

सड़कों पर अपनी सुई ढूँढ़ने लगी । किसी ने उससे पूछा– तुम सड़क पर क्या खोज रही हो? उसने कहा–मैं अपनी सुई खोज रही हूँ । फिर उस सज्जन ने पूछा–तुम्हारी सुई कहाँ गिरी थी तो उसने कहा–घर के भीतर । वह हँसा और बोला– जो चीज घर में खोई हो, उसे सड़क पर ढूँढ़ना कैसी मूर्खता है । उसने कहा–भाई, घर में दीपक जलाने को मेरे पास पैसे नहीं, और सड़क पर इतनी बड़ी लालटेन टंगी है । मैं घर में सुई नहीं खोज सकती। किन्तु मुझे कुछ न कुछ तो करना ही है, इसलिए मैं उसे सड़क पर खोज रही हूँ ।

ठीक ऐसा ही हम सब लोगों का हाल है । स्वर्ग-सुख स्वयं तुम्हारे अन्तर में हैं, फिर भी तुम सड़कों के पदार्थों में सुख की छानबीन कर रहे हो, अपने अन्तर के आनन्द को बाहर के पदार्थों में, इन्द्रियजन्य भोगों में, अपने से बाहर ढूँढते हो–कैसी विडम्बना है। भारतवर्ष से एक पागल के विषय में एक और सुन्दर किस्सा कहा जाता है । सड़क पर कुछ बच्चे खेल रहे थे । वह उनके पास आया और कहने लगा–आज नगर सेठ के यहाँ एक भारी राजसी भोज है । उसने इस भोज में शहर के सभी बच्चों को बुलाया है। यह तो आप जानते ही हैं कि बच्चे मिश्री-मिठाई को कितना अधिक पसन्द करते हैं ।

जब इस पागल के द्वारा बच्चों को नगर के सेठ द्वारा दिये जाने वाले भोज का निश्चय हो गया तब वे झट से नगर-सेठ के महल की ओर दौड़े, किन्तु वहाँ भोज तो था ही नहीं, वहाँ खाने की गंध तक न थी । बच्चों को धोखा हुआ, उस चकमे में आने के कारण वे कुछ देर के लिए लज्जित से हुए और फिर सब खिलखिला कर हँस पड़े । किन्तु जब उन्होंने उस पागल को भी अपने पास खड़े देखा तब उन्हें आश्चर्य हुआ । उन्होंने पूछा–अरे पगले, तू यहाँ कैसे आया? तू तो जानता था कि जिस भोज की बात तूने कही थी, यह बिल्कुल गप्प है । पागल ने कहा–कौन जाने, कहीं सचमुच यहाँ भोज होता, मेरा किस्सा कहीं सच निकल जाता और मैं ही पीछे रह जाता । केवल इस कारण कि यह उस झूठे निमंत्रण को नहीं खोना चाहता था, वह भी उन बच्चों के पीछे-पीछे चला आया ।

पूर्णतः ठीक इसी प्रकार उन लोगों का हाल हे जो अपनी ही

कल्पना से या यों कहो कि अपने ही आशीर्वाद से, पुष्पों को सौंदर्य प्रदान करते हैं, संसार की वस्तुओं को अपनी ही कल्पना से अपेक्षणीय बनाते हैं और फिर उस पागल की भाँति उन चीजों के पीछे दौड़ते हैं कि कहीं सचमुच वे उनके आनन्द से वंचित न रह जायें ।

निष्कर्ष – अपने ही अन्तर में स्वर्ग का अनुभव करो, और इसी क्षण तुम्हारी सारी इच्छायें पूरी हो जायेंगी, और सारे दुख-दारिद्रय और शोक-सन्ताप का नाश हो जायेगा ।

लो, जंगल के पेड़ हैं सब मेरे भाई-बहन,
शिलाओं में स्वांस ले जो करता मेरा ह्रदय कम्पन,
मिट्टी मेरा मांस है और पशु हैं मेरा चर्म,
बर्र में मैं क्रूर हूँ और मधुमक्षिका में नर्म,
पुरुष हैं केवल मेरे प्रेम की मधुर मुस्कान,
सरितायें बहती हैं मेरे स्वप्नों की तान,
सूर्य मेरा पुष्प हैं, शून्य में लटका हुआ,
मैं मर नहीं सकता, यम है मुझसे हारा हुआ,
मैं कभी जन्मा नहीं, पर मेरी स्वांसों के जन्म चिरन्तर,
जैसे होता निद्राहीन समुद्र में लहरों का सतत नर्तन ।

ओ स्वर्ग तो तुम्हारे भीतर है । इन्द्रियों के पदार्थों में सुख की खोज मत करो । बस अपने ही अन्तर में उस चिरन्तर आनन्द का अनुभव करो ।

(9)

पुनरागमन

अमेरिका से लौटने पर राम मथुरा में एक वृद्ध शिवगणाचार्य के साथ शान्ति आश्रम में ठहरे । शिवगणाचार्य घंटों राम के साथ एकान्त में बातें किया करते थे । वे स्वामी जी को सदा राजनीति से दूर रहने की परामर्श देते थे । वे कहते थे– राजाओं से मिलिये, धन संग्रह कीजिए और अपना एक सम्प्रदाय चलाइये । वे इस प्रकार की बहुत सी बातें जो अवसरवादी, अंधी और पुराण-पंथी बुद्धि के अनुसार ठीक थीं, सुझाया करते थे । स्वामी राम को इनसे घृणा होती थी किन्तु कुछ दिनों उस साधु के साथ रहना इन्होंने स्वीकार कर लिया था क्योंकि जब ये भारत उतरे थे तो एक बार इन्होंने सहज उदारता के वश साधु के स्वेच्छा से किए आत्मसमर्पण को स्वीकार कर लिया था ।

वे इन्हें लेने मुम्बई गए थे । वहाँ उन्होंने एकान्त में सारा जीवन राम को सौंप दिया था । स्वामी राम ने सच्चाई के अनुसार इसे भी सच्चा ही समझा । परन्तु यह शीघ्र प्रकट हो गया कि लालची को तो इस प्रकार मन्तव्य सिद्ध करने की इच्छा थी । वह अपना नाम विख्यात करने के लिए राम के पवित्र नाम का प्रयोग चाहता था । स्वामी राम ने अन्त में इस मैत्री को सदा के लिए तोड़ दिया । वह चुपचाप मथुरा से पुष्कर चले गए । वहाँ से इन्होंने शिवगणाचार्य को पत्र लिखा कि वे तो स्वयं की योजना से कार्य करेंगे; उन्हें राजाओं, धन सम्पत्ति से कोई मतलब नहीं, सम्प्रदाय स्थापन की इच्छा नहीं । उनके यहाँ इन बातों का कोई मूल्य नहीं ।

मथुरा में रहते स्वामी जी को यमुना की स्वच्छ रेणुका पर बैठना अच्छा लगता था । ये वहाँ धूप स्नान किया करते थे । प्रायः एक भगवा रंग की धोती पहनते थे । वहाँ इन्होंने कुछ अमेरिकनों से बातचीत के क्रम में कहा था–

'राम ईसाई धर्म का धन्यवाद करता है जो उसने तुम्हें ऊँचा उठाया। जो कुछ हिन्दू धर्म न कर सका वह ईसाई धर्म ने कर दिखाया।

सामाजिक दृष्टि से तुम्हारा उत्थान राम को बहुत प्यार लगता है। तुम राम के हो राम तुम्हारा है। मथुरा में भी इनके कुछ भक्तों ने नया समाज चलाने की प्रार्थना की। इस पर राम ने कोरा उत्तर दिया—

भारत में जितनी सभायें काम कर रहीं हैं सब मेरी हैं और मैं उनके द्वारा काम करूँगा।

उस समय इन्होंने हर्षोन्मत्त होकर नेत्र मूंद लिए, प्रेममय आलिंगन के चिह्न रूप अपने हाथ फैलाये और अश्रुपात करते हुए निम्न शब्द कहे।

ईसाई, हिन्दू, पारसी, सिक्ख, मुसलमान, वे सभी जिनकी नसें, अस्थियां, रक्त और मस्तिष्क मेरे प्रिय इष्टदेव भारत भूमि का नमक खाकर बनी हैं वे सब मेरे भाई हैं— मेरे ही प्राण हैं। कह दो उनसे कि मैं उनका हूँ। मैं सबको बाहूपाश से बांधता हूँ। मैं प्रेम हूँ। प्रकाश की भाँति प्रेम प्रत्येक वस्तु की चाहना करता है, प्रेम की कान्ति और प्रवाह के अतिरिक्त और मैं कुछ नहीं हूँ। मैं सबसे समान प्रेम करता हूँ।

पुष्कर में स्वामी राम पुष्कर सरोवर के किनारे किशनगढ़ राज भवन में ठहरे थे। उन दिनों इनके हाथ में एक बांस का खोखला डंडा रहता था। यह कहते—'यह डंडा बड़ा विचित्र है, इससे मगर भाग जाते हैं यह जादू की छड़ी है। राम को अब काग़ज़ पेंसिल और डंडा बस और किसी भी भौतिक वस्तु की चाह नहीं थी। राम को कमरे में बैठना अच्छा न लगता। घर इन्हें क़ब्रों के समान शून्य मालूम होते। शीतकाल में राम खुली धूप में बैठा करते और सायंकाल को पहाड़ियों पर चढ़ते, इधर-उधर घूमते और बराबर घूमते ही रहते। ओम्-ओम् के जप में तो इन्हें जरा भी विश्राम सह्य न होता। एक बार एक पर्वत शिखर की एक चट्टान पर बैठ गये और पुकार उठे—'अरे ये लोग ईश्वर को क्यों नहीं देख पाते? वे राम के पास आयें उन्हें ईश्वर के दर्शन कराये बस आँसू टप-टप बहने लगे। बांहें कांपने लगीं जैसे विश्व को अंक में भर

लेना चाहती हों ।

ये मगरमच्छ से भरे पुष्कर ताल में नहाने जाते । पानी में उतर जाते इन्हें बिल्कुल डर न लगता । ये डंडा पानी में छोड़ देते जैसे डंडा ही मगरमच्छों से रक्षा करता हो। खूब नहाते रहते, पत्थर से उसे खटखटाते हुए कहते–यह राम का पक्का साथी है । पंजाब के साहित्य में ये गोपालसिंह की काफियों के बड़े प्रेमी थे। रात में राम प्रायः 'नजीर' की कवितायें पढ़ते थे। ये स्वतंत्र वृत्ति के कवि के बहुत प्रशंसक थे । इनके हृदय में वही भाव लहराने लगते जिनके वशीभूत हो कवि ने रचना की हो । ये अपने सामने किसी को किसी के विरुद्ध कोई बात न करने देते । जैसी हम अपनी आलोचना करते हैं वैसी सबकी करें यही उचित है ।

यदि इनके मुंह से कभी व्यक्तिगत आक्षेप होने लगते तो झट 'ओम्' का उच्चारण करने लगते और कहते –'सावधान मन्दिर की घंटी बज रही है । इनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों पर ओम् का काफी प्रभाव पड़ता । ये प्रत्येक प्रश्न का उत्तर ओम् कहते और हर चीज को ओम् कहना इनका स्वभाव बन गया था । जब कभी आत्मसाक्षात्कार सम्बन्धी कोई कथा सुनाते तो अन्त में कहते 'यही तो सच्चा वेदान्त है ।' मथुरा में अपने भक्तों के झुण्ड को ये यमुना किनारे ले जाते थे और बूढ़े-बच्चे सबके कपड़े जूते उतरवाकर व्यायाम करवाते । पुष्कर में साथियों की संख्या अधिक न थी, केवल छः जो सत्संग हेतु एकत्र हुए थे राम आनन्द लेने के लिए बिना प्रयोजन घूमना सिखलाते ।

राम ने इन दिनों जितने व्याख्यान दिये उनमें देशप्रेम की ज्वाला अधिक है । विशेषतः नवयुवकों को दिये संदेश तो देश सेवा की लगन से ओतप्रोत हैं । इनके लिखित उपदेशों और संदेशों में मनुष्य जाति के सर्वोच्च आदर्श की रूप रेखा की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । अपने इसी संदेश को इन्होंने अलौकिक ज्ञान व पूर्ण व्यक्तित्व की मुद्रा के साथ निजी तौर पर संसार को सुनाया था । परन्तु स्वामी राम अपने

विषयों पर भी विवेकानन्द से प्रभावशाली भाषण न कर सके। विवेकानन्द राष्ट्र निर्माता थे—रामतीर्थ आनन्द विभोर महान् आत्मा जिसे मनुष्य के कामों से प्रयोजन न था। किन्तु जैसा इन्होंने चाहा अपने हृदय से वैसा ही फाड़कर अलग कर दिया। इनकी चेतना के निर्मल दर्पण में धब्बे की जगह न थी। उसे कोई धूमिल न कर सकता था।

मैदानों में जनता के सामने भाषण करते। जब थक जाते शक्ति का ह्रास होने लगता तो ये समाज से दूर पर्वतीय एकान्त में चले जाते। एकान्त इन्हें सर्वाधिक प्रिय था। ये पर्वतों में एकान्तवास के निमित्त जगह चुनने में बड़ा प्रयत्न करते। एक बार इन्होंने बद्रीनाथ जाने वाले मार्ग पर गंगा के किनारे व्यास आश्रम को पसन्द किया। वहाँ लगातार एक वर्ष तक निवास में इनकी दाढ़ी बढ़ गई। वहाँ जो इनके दर्शन करने जाता उसे कहते—'देखो राम के व्यास जैसी दाढ़ी निकली है।'

वहाँ इन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। शंरभाष्य ग्रंथ और वेद पढ़े। प्रयाग और काशी में वेदान्त पर व्याख्यान देते समय कुछ पंडितों ने ऐसे कटाक्ष किये थे कि स्वामी जी स्वयं संस्कृत के विद्वान् नहीं, फिर वेदान्त का समुचित प्रचार कैसे कर सकते हैं? स्वामी राम को यह बात लग गई, हृदय से कवि तिलमिला उठा, जन्मजात विद्यार्थी ने उत्तर देने के लिए कमर कस ली। इन्होंने निश्चय किया वेद का हर मंत्र पढ़ूंगा, समझूंगा, संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके वेदान्त को प्राचीन परिपाटी के अनुसार सिद्ध कर दूँगा। व्यास आश्रम के निवास के पश्चात् जो पण्डित इनसे मिले उन्होंने इनमें विशेष परिवर्तन पाया। अब ये संस्कृत के विद्वान् हो चुके थे।

संस्कृत के अध्ययन से राम के ज्ञान की गरिमा और बढ़ गई। अब इनकी गहराई इतनी गम्भीर हो गई कि उसकी कुछ थाह नहीं लगाई जा सकती थी। व्यास आश्रम में निवास के अनन्तर इनका अधिकांश समय संस्कृत व्याकरण के नियमों के अध्ययन में ही बीतता। कभी-कभी वेदों के उन उल्टे ऊपरी अर्थों और भ्रमजन्य

व्याख्याओं पर जी खोलकर हँसते । ये पाश्चात्य विद्वानों की शैली के अधिक प्रशंसक थे, हिन्दू पण्डितों के प्रमादजन्य अज्ञान की निन्दा करते थे । इनकी इच्छा एक ऐसी पुस्तक लिखने की थी, जिसमें वेद मंत्रों का प्राचीन प्रणाली के अनुसार अर्थ हो ओर उनकी व्याख्या भी ।

जीवन की इस बेला में राम हृदय में शंकराचार्य के दर्शन शास्त्र ने पूरी तरह घर बना लिया था । प्रत्यक्ष था कि इनके हृदय के जीते जागते सवाक् आह्लाद की जड़ें सूखती जाती थीं । जो भोजन ये फारसी और अंग्रेज़ी साहित्य से लिया करते थे वह अब संस्कृत शब्द शास्त्र बन गया था । वह प्रेरणा जो दूसरे को चुम्बक की भाँति खींचती थीं इनके शरीर से दूर होती जा रही थी । व्यास आश्रम में स्वामी जी लेख बहुत लिखा करते थे । इस काल के लेखों में भक्ति पर विशेष जोर है ।

बसून के आस-पास के रहने वाले लोग इन्हें दूध और फल दे जाया करते थे । वे कहते थे–'स्वामी जी आदमी नहीं देवता हैं । वे राम की बातों में से एक भी नहीं समझ पाते थे किन्तु राम के लिए एक झोंपड़ी उन्होंने बना दी थी और उनके लिए कुछ न कुछ भोजन लाया करते थे । राम से बातें करते उन्हें प्रसन्नता होती । वे उनके सच्चे साथी और प्रेमी बन गये थे । राम कहते थे–'लोगों को केवल मेरे फूलों से मतलब है । मुझे सभी सूंघना चाहते हैं,जब फूलों के रूप में खिलता हूँ । किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं कि मुझे पृथ्वी के भीतर अन्धेरी कन्दराओं में अपनी जड़ों को पुष्ट करने में कितना समय लगता है कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है जिससे फूल बराबर खिलते रहें ।

वेदान्त दर्शन के अनुसार जो आत्मनिष्ठा का स्वरूप है, हिन्दू जीवन का जो आदर्श है, ये उसके समीप पहुँच गये थे । घंटों-दिनों तक पद्मासन लगाये रहते न शरीर का ध्यान न शीत उष्ण आदि बाह्य परिस्थितियों का और कह उठते–कौन कहता है कि संसार है । जो न कभी हुआ ! न है ! न होगा ! जब लोग इनके पास पहुँच जाते तो कहते–तुम लोग आकर राम को भुलावा देना चाहते हो कि तुम भी

सच्चे हो परन्तु राम उसे नहीं भूल सकता। जितने भी सम्बन्ध हैं वे प्रभु को अपने अन्तर की सच्ची आत्मा के विस्मरण के बहाने बन जाते हैं। यह स्पष्ट था कि ज्यों-ज्यों इनका दार्शनिक अध्ययन गम्भीर होता जाता त्यों-त्यों ये उदासीन होते जाते। ये आत्मा को प्रेम रूप में ही देखते, सुनते और प्रेम में ही आत्मा का रहना, सुनना और श्वांस लेना चाहते थे।

एक दिन राम ने कहा—'राम को ये मालूम न था कि अब इस देश में यह भगवा वस्त्र स्वतन्त्रता का बाना नहीं रह गया है। गुलामों ने यह भेष लेना आरम्भ कर दिया है और उन्होंने इसे नियमों से इतना जकड़ दिया है कि राम को उनसे बेचैनी मालूम होने लगी है। अब जब राम मैदानों में जायेगा तो जनता के सामने भरी सभा में इस वेश के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। राम घोषणा करेगा कि अब संन्यासी के रक्तवर्ण वेश द्वारा स्वतंत्रता की साधना नहीं की जा सकती, क्योंकि वह परतन्त्रता द्योतक बन गया है। अब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं रह गई थी कि वशिष्ठ आश्रम में ही इन्होंने यह रंग उतार फेंका। संन्यासी का लम्बा चौड़ा झांगा उतार कर इन्होंने कुर्ता और पायजामा पहनना आरम्भ कर दिया और काले धूमिल वर्ण का रंगीन साफा बांधे रहते। अब पूछते—'देखो अब राम तो भारी मुस्लिम साफा बांधे हुए मौलवी लगता है न?'

(10)

महाप्राण

ये अब बहुत बदल गये थे, इनका आह्लाद कम हो रहा था। क्षण-क्षण फूट पड़ने वाला प्रफुल्लता का प्रभाव नीचे पैठ गया था। चलते-चलते फिसल पड़ते तो झट कहते – 'ओ देखा! राम ने अपने प्रियतम को भुला दिया है तभी तो गिरा है। नहीं तो गिरना कैसा? पहले हम भीतर से गिरते हैं फिर बाहर से। बाह्य पतन तो केवल परिणाम है। तुम सदैव भीतर का ध्यान रखो, श्वांस पर प्रियतम की याद करो उसके बिना एक भी क्षण व्यतीत नहीं करो। ये एक पक्के वैष्णव हो गये थे। अपने आप संध्या के समय ताली बजा-बजा कर नाचते, गाते। इन्हीं दिनों उन्होंने स्वर्गीय न्यायाधीश बैजनाथ जी की प्रार्थना विषयक हिन्दी पुस्तक के लिए भूमिका लिखी थी। यह छोटा सा लेख स्वामी जी की तत्कालीन दशा का यथार्थ चित्रण करता है (जब ये वाशिष्ट आश्रम में थे) एक दिन इन्होंने कहा था–'यदि वेदान्त का पूर्ण साक्षात् कर लिया जाये तो यह भौतिक शरीर भी अनादि बनाया जा सकता है। मैं समझता हूँ जो यह बात उन्होंने कही थी उसका पूरा मन्तव्य अभी उनकी कल्पना में विकसित हो रहा था।

वैसे तो राम बहुत पढ़ने वाले थे। परन्तु अब अधिकांश झोंपड़ी में बैठे या लेटे रहते। अब इनसे पढ़ा नहीं जाता था। थोड़ी ही देर में पुस्तक हाथों से गिर पड़ती। आँसू बहने लगते और कहते–'राम से अब पढ़ना नहीं हो सकता।' अत्यन्त थकावट और आत्मनिष्ठा की बाह्य दशा एक सी दिखाई देती थी। इनके शिष्य नारायण स्वामी का कहना था यह शैथिल्य उनके अपचन से है। ये बहुत दिनों से अनुचित भोजन पा रहे हैं। राम के प्रति अनन्य भक्ति होने के कारण वे वाद-विवाद में उलझ पड़ते और प्रयत्न करते कि स्वामी जी ठीक राह पर आ जायें।

अनेक अवसरों पर नारायण स्वामी इसी प्रकार के कठोर विवादों में पढ़ जाते तो स्वामी राम उन्हें याद दिलाते–कृपया विवाद

बंद कीजिए। इन्होंने आज्ञा दे रखी थी कि हम लोग बातचीत में किसी भी व्यक्ति विशेष की चर्चा न लायें चाहे हृदय उसके लिए किसी भी प्रकार की कटु से कटु आलोचना क्यों न करता हो। एक दिन नारायण स्वामी किसी व्यक्ति को काट छांट कर रहे थे, स्वामी राम ने उन्हें अपने आदेशों को याद दिलाया तो वे बोले—नहीं स्वामी जी मैं उसकी आलोचना नहीं करता केवल उसकी मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहा था। इस बात पर काफी देर तक हँसी होती रही। इन दिनों स्वामी राम को अपनी आलोचना स्वयं अच्छी न लगती थी और स्वामी नारायण कोई वाद न प्रस्तुत कर सके,
इसलिए इन्होंने उन्हें अलग रहने का आदेश दे दिया।

वास्तव में नारायण स्वामी को राम की इस शांति से बेचैनी हो रही थी। इन दिनों इन्होंने निश्चय किया कि बद्री केदार की हिम शिलायें देखने चलेंगे। स्वामी जी भी तैयार हो गये। बसून की चोटी पर चढ़ गये। संध्या हो गई सामने एक झोंपड़ी थी। झोंपड़ी वाले गडरिये ने पहले अभद्रता दिखाई परन्तु बहुत समझाने पर वह ठहराने को तैयार हुआ। सुबह होते ही स्वामी जी बाहर निकले और हिम शिखरों की शोभा निहारने लगे। उसी समय नारायण स्वामी को पता लगा कि राम और आगे जाने को तैयार नहीं है। राम ने कहा—

'निरुद्देश्य घूमने से क्या लाभ? यदि हम प्रियतम को भूल जायें तो पहाड़ियों में विचरण से कुछ नहीं हो सकता। घर में सौ बार धन्य है यदि प्रियतम की याद रहे।' इन बातों से पता लगता कि अब राम शान्तिप्रिय और एकान्त प्रवास चाहते हैं अतः वापिस आश्रम लौट आये।

यहाँ रहते इन्हें एक दिन एक पत्र मिला उसमें लिखा था—भारतीय पुलिस आपका पीछा कर रही है वह आपको बड़ा विद्रोही नेता मानती है। जो ब्रिटिश शासन को उलट देना चाहता है। ये बोले—

'उनसे कह दो राम अपनी रक्षा के लिए एकशब्द भी नहीं कहना चाहता। वे शरीर के साथ चाहे जो कुछ भी करें मैं जो कुछ हूँ उससे अन्यथा नहीं हो सकता। एक भारतीय होने के नाते मैं देश को स्वतंत्र

कराना चाहता हूँ । स्वतंत्रता तो एक दिन होगी ही किन्तु राम इस देश की स्वतंत्रता प्राप्त करेगा या दूसरे हज़ारों राम उसे प्राप्त करेंगे, कोई कुछ नहीं कर सकता ।'

रामतीर्थ कभी-कभी कह उठते–'राम अब मौन हो जायेगा ।' एक बार नारायण स्वामी ने कहा–''मैं आपकी मौन प्रतिज्ञा भंग कर दूंगा ।'' इनके नेत्र लाल हो उठे और अत्यन्त गम्भीर होकर कहा–''मौनी को कौन फिर से बुलवा सकता है?'' वे डर से सहम गए और आगे से एक शब्द भी न बोले ।

एक मास बाद राम टिहरी आ गये तो टिहरी नरेश के अतिथि बनकर उनके चन्द्र भवन में रहने लगे तब इन्होंने स्वामी नारायण को आज्ञा दी कि वे जायें और गंगा किनारे अपनी देख-रेख में रहने के लिए एक झोंपड़ी बनवायें । चन्द्र भवन में निवास करते समय राम लेख लिखा करते थे । इनका अन्तिम लेख कुछ स्याही कुछ पेंसिल दोनों से लिखा गया था । गंगा नीचाई में बहती और चन्द्र भवन ऊँचे था । ये सदा नीचे जाकर पहले व्यायाम करते और फिर गंगा में स्नान करे । गंगा तैर कर पार करने और एक ऊँची चट्टान से धारा में कूदने से इनके घुटने में चोट आ गई । इसलिए दीपावली के कुछ दिन पूर्व से ये गंगा जल ऊपर मंगवाकर स्नान किया करते थे ।

17.10.1906 ई० को दीपावली के दिन इन्होंने पुनः गंगा जी में स्नान का संकल्प किया । अन्तिम संदर्भ पूरा हो चुका था । उसे एक किनारे रखकर नीचे उतरे । गंगा जी में छाती-छाती जल में खड़े हो गये जैसे इनकी आदत थी । दोनों नथने बंद करके भीतर डुबकी लगाई । ऐसा मालूम होता है वहाँ इनका पैर फिसल गया। दुर्बल और क्षीणकाय तो थे ही क्योंकि महीनों से पेय पदार्थ के अतिरिक्त कोई ठोस भोजन न करते थे । साथ ही घुटने में अभी दर्द भी था या ये तैर न सके और न स्वयं को संभाल ही सके अथवा वहाँ नीचे सतह में पानी की भंवर में फंस गये । बड़ी देर बाद ये पानी के ऊपर दिखाई दिये । ऐसा मालूम हुआ निकलने की चेष्टा कर रहे हों किन्तु वह शीघ्र ही

समाप्त हो गई । ज्यों ही भंवर से निकलकर पानी के ऊपर आये त्यों ही इनका शरीर गंगा की तेज धार में बहने लगा जैसे निष्प्राण हो गया हो ।

भारत आने के बाद उन्होंने कुछ समय तक देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और लोगों को व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा दी। बाद में उत्तराखण्ड चले गये और वहीं उन्होंने अपना स्थायी निवास बना दिया। सन्1906 ई० की दीपावली थी। उन दिनों उन्होंने एक लेख लिखा जिसमें मौत का आह्वान किया गया था। उससे कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने अपने शिष्य नारायण स्वामी से कहा था कि – 'राम की तबीयत अब संसार से ऊब गई है । अतः वह शीघ्र ही इस संसार को त्यागने वाला है और दीपावली को ही 33 वर्ष की आयु में 17.10.1906 ई० को उन्होंने गंगा में जल समाधि ले ली । स्वामी रामतीर्थ जिस समय संसार से विदा होने लगे उस समय मृत्यु को सम्बोधित करते हुए उन्होंने जो भाव व्यक्त किये वे एक अध्यात्मवादी भारतीय के अनुरूप ही थे उन्होंने आनन्द विभोर होते हुए कहा था–

ऐ माँ की गोद के समान शांतिदायिनी मृत्यु ! आओ और इस भौतिक शरीर को ले जाओ । मेरे पास और बहुत से नये शरीर हैं ।

मैं तारों की चमक और चन्द्रमा की किरणों का शरीर धारण कर सकता हूँ । मैं आत्मा रूप हूँ । संसार के सारे शरीर मेरे हैं । सारी सृष्टि ही मेरी देह है और मैं उसका शाश्वत, अविनश्वर और चिर-चेतना देही हूँ । मैं शुद्ध, बुद्ध और निरुपाधि ब्रह्म हूँ ब्रह्म । व्यापक और विकार रहित ब्रह्म ।

(11)
स्वामी रामतीर्थ ज्ञानामृत

1. जिन्हें सांसारिक प्रलोभन परास्त नहीं करते, वही संसार को परास्त कर सकता है ।
2. अपनी समस्त शक्तियों को, अपने सम्पूर्ण बल को इसी तथ्य में विलीन कर दीजिए कि केवल एक ही सत्य है– ऊँ! ऊँ!! ऊँ!!!
3. सभी संदेह अज्ञान के कारण हैं । अज्ञान दूर होते ही पल भर में सारे संदेह उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है ।
4. भय से ही दुःख आते हैं,भय से ही बुराइयां उत्पन्न होती हैं और भय से ही मृत्यु भी होती है ।
5. दुनियाँ में जितने भी बड़े-बड़े कार्य हुए और हो रहे हैं सभी आत्मविश्वास के परिणाम हैं । संसार में उन्हीं को सब कुछ प्राप्त होता है जो सब कुछ खोकर भी आत्मविश्वास नहीं खोते ।
6. परमात्मा का चिन्तन ही सच्चा काम है । चाहे न्यूयार्क में रहो चाहे हिमालय के एकांत में । यदि चिन्तन सदैव एक सा रहता है तो प्रभाव भी एकसा ही होगा । स्थान, रूप, रंग, ढंग आदि का इस तथ्य पर कोई अंतर नहीं पड़ता ।
7. अपने आप को ईश्वर के हाथ में सौंप दो फिर तुम्हारे लिये कोई कर्तव्य नहीं रह जायेगा । ऐसा करो कि ईश्वर तुम्हारे भीतर से चमकने लगे, भीतर बाहर झलक मारने लगे । ईश्वर में रहो, ईश्वर को खाओ, ईश्वर को पियो । सत्य का अनुभव करो ।
8. सर्वश्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं विद्या या ज्ञान का दान ही है । आज आप किसी मनुष्य को भोजन खिला दें, कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायेगा, किन्तु उसको कोई

कला दें तो आप उसे जीवन पर्यन्त धन प्राप्त करने में समर्थ बना देते हैं ।

9. अहंकार को त्याग कर समस्त देश का रूप होकर आप आगे बढ़ें तो देश आपके पीछे चलने लगेगा ।

10. आप अपनी शक्ति को उत्तम विषयों की ओर लगने दीजिए तब आपके पास विषय वासना के विचार का समय भी न रहेगा ।

11. यह एक दैवी विधान है जिसकी कोनों-कोनों, बाज़ारों-बाज़ारों सारे संसार में घोषणा कर देनी चाहिए कि तुम ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करोगे तो अंधे हो जाओगे ।

12. वह मनुष्य जो अपने साथी से घृणा करता है उसी मनुष्य के समान हत्यारा है जिसने प्रत्यक्ष में हत्या की हो ।

13. लोग अथवा अन्य सभी वस्तुएं तभी तक हमें प्यारी लगती हैं जब तक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं । जिस क्षण वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करने में बाधक होंगी उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं ।

14. अपने चित्त को शांत रखो, अपने मन को शुद्ध विचारों से भर दो तो कोई भी मनुष्य आपके विरुद्ध नहीं हो सकता ।

15. वेदांत चाहता है कि आप काम को काम के लिये करें, फल के लिए नहीं ।

16. यदि कोई मनुष्य मुझे अपने मत को एक शब्द में प्रकट करने को कहे तो मैं कहूँगा—आत्मविश्वास ।

17. संसार मेरा घर है । उपकार मेरा धर्म है ।

18. उन्नति वही कर सकता है जो स्वयं अपने आपको उपदेश दे सकता है ।

19. जो काम एक आदमी कर सकता है वह काम हर आदमी कर सकता है । केवल दृढ़ संकल्प शक्ति होनी चाहिए ।

20. राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही देवताओं की अराधना है ।

21. सत्य का अभ्यास शक्ति और विजय लाता है। चर्म अभ्यास तुम्हें चमार बना देता है।
22. मनुष्य जैसा भाव करता है वैसा ही हो जाता है। उसके भाव ही उसका सृजन करते हैं। वही अपना भाग्य विधाता है।
23. जीवन विजय के लिए धैर्य से बड़ी और कोई शक्ति नहीं है।
24. चरित्र निर्माण के लिये शुद्ध प्रेम और स्वार्थ त्याग की आवश्यकता होती है। परोपकार तो एकदम परिस्थितियों पर निर्भर करता है।
25. हृदय की इच्छायें कुछ भी पाकर शांत नहीं होती, क्योंकि हृदय तो परमात्मा को पाने के लिए बना है।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)